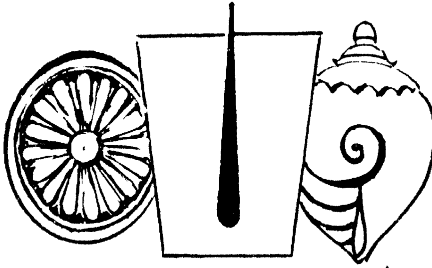


मुमुक्षुपडि



नंडूरि शोभनाद्राचार्युलु
हिन्दी, तेलुगु संस्कृत-साहित्य विद्याप्रवीण
कोरुकोंडा

प्रचुरणकर्ता

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति।

Since the Vedic times, the paths of bhakti, gnana and karma have considerably influenced the Indian spirituality. Based on the Vedanta Philosophy and upholding the Bhakti cult many traditional systems like Advaita, Visishtadwaita and Dwaita are popular in the country. As the Bhakti marga is found to be more easier and mor; sublime, the great preceptors popularised it. A voluminous body of literature, which Lays special emphasis on devotion exists in the vishistadwaita tradition. Among these works "Mumukshupadi" of Sriman Pillai Lokacharya, occupies a preeminent place. Though the book is apparently small, its significance is very great. The wide acclaim it has received from the scholars is an ample proof of its greatness. In this unique work. the author brings out the essence of ' Rahasya — traya" concept in accordance with the Vishistadwaita. Tirumantra, dwaya and charama sloka, which are triune gens lead the devotees to prapatti (surrender). However this work, being written in Tamil, like all other sacred works, remained unknown and inaccessible to non-Tamil speaking people. Now, the publication wing of Tirumala Tirupati Devasthanams has brought out an elegant translation of this work in Hindi. The Translator is no less a person than vidwan Sri Nanduri Sobhanadracharyulu, who is a well known scholar in Tamil, Hindi and Sanskrit. The original work has been translated in a simple and graceful style. We have great pleasure in presenting this work to the reader and there is no doubt that the devotees will be greatly benefitted from this great classic.

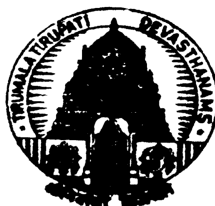
(Sd.) Ch. VENKATAPATHI RAJU

मुमुक्षुपडि

पिल्लैलोकाचार्यकृत महान ग्रंथ

हिन्दी अनुवाद

नंडूरि शोभनाद्राचार्युलु
हिन्दी, तेलुगु संस्कृत-साहित्य विद्याप्रवीण
कोरुकोंडा



प्रचुरणकर्ता
कार्यनिर्वहणाधिकारी
तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति ।
१९८७

MUMUKSHUPADI

Author :
PILLAILOKACHARYA

Hindi Translation by
NANDURI SOBHANADRACHARYULU

T. T. D. Religious Publications Series No. 318

Copies : 2,000

Price : Rs.

Published by
Sri Ch. Venkatapathi Raju, I. A. S.,
Executive Officer,
Tirumala Tirupati Devasthanams,
Tirupati.

Printed at :
Tirumala Tirupati Devasthanams Press,
Tirupati.

श्रीमान् ते. कं. गोपालाचार्यजी न्यायवेदांत विद्वान् श्रीमन्नारायण वेदवेदांगविद्यालय (नडिगड्डुपालेम्) कुलपति के मंगळाशासन।

हिन्दी अनुवाद

श्रीमान नंडूरि शोभनाद्राचार्यजी कोरुकोंडा के रहनेवाले हैं। हमारे पडोसी होने के नाते बचपन से ही इनका विद्याध्ययन मैं अच्छी तरह जानता हूँ। ये संस्कृत व हिन्दी साहित्यों में संपूर्ण रूप से आगे बढकर उत्तम परीक्षाओं में सफल हुए हैं। बहुत समय हिन्दी प्राध्यापक के रूप में और प्रचारक के रूप में जीवन बिताकर उन नौकरियों से अवकाश प्राप्त किया। उमके बाद मेरे पास वासुदासाश्रम में (नडिगड्डुपालें) आये। वहाँ के श्री वेदवेदांग विद्यालय में जो श्री स्वर्गस्थ त्रिदंडिनारायण रामानुज जीयर स्वामी से स्थापित है। द्राविड वेदांत रहस्यग्रन्थों का अध्ययन किया। उनका गंभीरता से मनन करके पंडित महासभाओं में व्याख्यान देते हैं।

श्री श्री श्री भूतपूर्व त्रिदंडिरामानुज जीयर स्वामी ने द्राविड भाषा में रहनेवाले विशिष्टाद्वैत संप्रदाय ग्रन्थों को सरल हिन्दी में उलृथा (अनुवाद) करने का आदेश दिया। उनके आदेश के अनुसार उन ग्रन्थों का अध्ययन करके उनका मथनकर अब उत्तम रहस्य ग्रन्थ "मुमुक्षुपडि" को हिन्दी में अनूदित किया। मेरे पास समालोचना के लिये भेजा है। मैंने उसका अवलोकन किया। मूलसूत्रों का अनुवाद अनुकूल है। थोडी हिन्दी जाननेवालों को भी भावार्थ सुग्रह होता है।

यदि यह छापा जाय और लोक में खासकर हिन्दी जनता में पहुंचा जाय तो इसमें कोई शक नहीं है कि यह उत्तम ग्रन्थ के रूप में प्रकाशमान होगा।

ता. २१-३-८१
मुकाम-राजमंद्री

(हा.) न्यायवेदांत विद्वान
ते. कं. गोपालाचार्य
कुलपति
श्रीमन्नारायण वेदवेदांग विद्यालय।
वासुदासाश्रम
नडिगड्डुपालेम् (पोस्ट)

श्री पराशर भट्टर सुदर्शनभट्टरजी के मंगळाशासन
आनुवंशिकधर्मकर्ता
कोरुकोण्डा नृसिंह देवस्थानम्,
कोरुकोण्डा via राजमंद्री
पू. गोदावरी जिला

कोरुकोंडा के रहनेवाले उभयभाषा प्रवीण श्रीमान् नंडूरि शोभनाद्राचार्यजी के हिन्दी भाषा में अनूदित मुमुक्षुपडि नामक ग्रन्थ को मैं ने पढा।

मुमुक्षुप्पडि नामक ग्रन्थ द्राविड भाषा में पूर्वाचार्यों में एक महानुभाव श्री पिल्लै लोकाचार्य ने लिखा। संसार के चेतनों के उज्जीवन के लिये यह लिखा गया। इसमें तिरुमंत्र द्वय और चरमश्लोक तीन विद्यमान हैं। इनको रहस्य त्रय कहते हैं। इनका अर्थ इस ग्रन्थ में लाया गया। मोक्ष चाहनेवाले हरेक मानव को अवश्य जानने लायक है। इसमें मुमुक्षुओं को बहुत आवश्यक विषय हैं। इसके द्राविड भाषा में होने के कारण जो उत्तर भारत के रहनेवाले हैं उनके इसका अध्ययन करके संसार से पार होने के लिये और यहाँ के हिन्दी जाननेवालों को सुगम होने के लिये श्रीमान नंडूरि शोभनाद्राचार्यजी ने सुंदरशैली में ऐसी हिन्दी भाषा में अनुवाद किया कि साधारण पढे लिखे लोग भी पढकर समझ सके। इसलिये मैं चाहता हूँ कि आस्तिक भक्त व वैष्णव सब के सब इसका अध्ययन करके भगवान की कृपा के पात्र बनें। फिर यह भी चाहता हूँ कि जिन्होंने बडी मेहनत करके हिन्दी भाषा में अनुवाद किया उन्हें वैकुण्ठवासी श्रियःपति की अपार कृपा मिले।

भागवत विनम्र
(ह.) पराशर भट्टर
सुदर्शन भट्टर
कोरुकोंडा
सरपंच
कोरुकोंडा देवस्थानम के
कार्यवाही कमेटी

ता. ३-४-८१
कोरुकोंडा

मुमुक्षुपडि का हिन्दी अनुवाद

लोकाचार्य गुरवे कृष्ण पादस्य सूनवे
संसार भोगि संदष्ट जीव जीवातवे नमः ।।
श्री सद्गुरु गोपालाचार्याय नमः ।

इस महान ग्रन्थ के रचयिता श्री पिल्लैलोकाचार्य हैं। सत् संप्रदाय के प्रवर्तकों में ये तीसरी पीढी के हैं। इनके पहले नंबिल्लैजी ने भगवद्विषयादि ग्रन्थों की रचना की। यह मानकर कि उनका अध्ययन करके उज्जीवित होना दुस्साध्य है, यह मानकर सुलभ व आसान रूप से सबको मोक्ष पहुँचानेवाला ज्ञान ही उज्जीवित होने के लिये जरूरी है। ऐसे ज्ञान को आसानी से दो या तीन पदोंसे ही पहुंचानेवाले तिरुमंत्र द्वय और चरम श्लोकार्थ है। इनके विवरण करनेवाले कुछ संग्रहरूप रहस्य ग्रन्थों की रचना की। उनमें "मुमुक्षुपडि" जो नातिविस्तार है और न संक्षिप्त रूप विराजमान है। यह बहुत चालूमे है। और भी इस ज्ञान के विस्तार करने के लिये "तत्त्तत्रय" "श्रीवचन भूषण" आदि ग्रन्थों की रचना भी की है। जबकि श्रीमद्रामानुज ने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के उद्धार और धर्मव्याप्ति के लिये आवश्यक प्रबन्ध करके परमपद प्राप्त किया। इसके बाद नंजीयर के समय सत् संप्रदाय पडि नामक ग्रन्थ बहुत प्रचार में लाया गया। 'सत् संप्रदाय पडि माने द्राविड प्रबन्धों के द्वारा इस पथ का आलंबन करके पार होना है। यही सत्संप्रदायपडि कहलाता है।

श्रीरामानुज ने श्रीभाष्य के मंगळ श्लोक में "भावतु मम परिस्मिन शेभुषी भक्तिरूपद" कहकर भक्ति की प्रार्थना की। इन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की है "भक्ति को ही मोक्ष साधन के रूप में प्रमाणित किया जानेवाला है। श्रीभाष्य में पहले से अन्त तक भक्ति को ही मोक्ष साधन के रूप में सिद्धान्तरित किया है।

इस सिद्धान्त के पर्यवासन फलस्वरूप ही· "सत् संप्रदाय पडि" है। इस भक्ति की पराकाष्ठा ही प्रापत्ति है।

श्रीरामानुजजी धर्म के संस्थापक हैं। उनके रचित सब ग्रन्थों में जो प्रमाणीकृत भक्ति मार्ग है वही उज्जीवन का हेतु है। यह सभी आम लोगों को मालुम है। इसीलिए इनको अपने 'सत् संप्रदायपडि' के अवलंबन कराने में कुछ तकलीफें पेश आई हैं। तो वे सभी सत् संप्रदायपडि' के प्रवर्तक लोगों को यह बताते आये कि रामानुज ने स्वरचित ग्रन्थों में सत् संप्रदायपडि को ही समझाया।

यह 'मुमुक्षुपडि'' सभी प्रपन्नों को समादरणीय ग्रन्थ है। इसके लिये मणवाळ महामुनि ने तिरुमंत्रार्थनामक व्याख्या लिखकर मेहर्बानी दिखाई।

अब श्री पिल्लैलोकाचार्यजी के 'मुमुक्षुपडि' का हिन्दी में अनुवाद किया जा रहा है।

लिपि विषय की बातें

द्राविड भाषा लिपि में ழ ட ற ள वर्णा हैं जो हिन्दी लिपि में नहीं हैं। इनका उच्चारण (ழ का) अंग्रेजी के (z) जड के बराबर है। ज से भिन्न है बराबर उच्चारणवाले अक्षर के अभाव से ழ अक्षर ज्यों का त्यों इस ग्रन्थ में इस्तेमाल किया गया। बारहखडी हिन्दी लिपि के अनुसार 'ि' दीर्घ 'ी' इकार आदि प्रयोग में लाये गये हैं।

'ட' यह त कार के बराबर उच्चारणकाला होता है। अतः तकार ही हिन्दी लिपि में काम में लाया गया।

'ற' यह महाप्राण 'र' के समान मूर्धन्य अक्षर है। इसके लिये 'र' का ही प्रयोग किया गया। द्राविड भाषाज्ञ पंडितों से 'ற' इसका उच्चारण सीखकर संदर्भानुसार 'र' का उच्चारण करना चाहिए। (ள) अक्षर ल उच्चारण से भिन्न होता है। संस्कृत लिपि में ळ का इस्तेमाल होता है। अतः ळ के लिये ळ का प्रयोग किया गया। द्राविड भाषा में इसका विषेश प्रयोग है।

द्राविड भाषा में हिन्दी के क, ग वर्णों का उच्चारण है। पर अलग-अलग वर्ण नहीं है। अतः कही 'क' की तरह कहीं 'ग' की तरह उच्चारण होता है। यह भेद तद्ज्ञों से ही जानना चाहिए। इसी प्रकार त, द का भी उच्चारण व प्रयोग जानना चाहिए। स्वर रहित हल

का उच्चारण 'क्' 'ग्' के रूप में किया जाता है। हिन्दी लिपि में स्वराहित्य का चिह्न है। '्'। यह अक्षर के नीचे लिखा जाता है। अतः द्राविड भाषा के अक्षरों के स्वर राहित्य दिखाने के लिये मूल सूत्र जो द्राविड भाषा के हैं ऐसा चिह्न लिखा गया। जैसे — "च्चोन्नालुम्" "तन्" इयादि। 'ळ' 'ഴ' हिन्दी लिपि में नहीं है। द्राविड भाषा के उच्चारण के लिये इस लिपि में लाये गये हैं। इनके नीचे भी '्' चिह्न लिखकर स्वर राहित्य सूचित किया गया।

अवतारिका

श्रियः पति श्री वैकुण्ठ के रहनेवाले नित्यों और मुक्तों से सदा अनुभव किये जानेवाले सर्वेश्वर निरतिशय आनन्द से युक्त होते हैं। वे संसारी चेतन, उन नित्यसूरियों के बराबर (जो वैकुण्ठ) में हमेशा सर्वेश्वर के साथ आनन्द पाते रहते हैं। भगवान का अनुभव पाकर हमेशा सेवाकार्य में रत होनेवाले हों यद्यपि भगवान के अनुभव की प्राप्ति होने पर भी उसे खोकर ''असन्नेव' के अनुसार (नहीं के बराबर) रहते हैं। उन संसारी चेतनों के दुःख का स्मरण करके भगवान बहुत व्याकुल चित्तवाले होते हैं, ये चेतन इंद्रियों व शरीरों के अभाव में रहकर कट पक्षवाले पक्षियों की तरह रहते हैं। इनको ऐसी दशा में सर्वेश्वर इंद्रिय व शीरों को देते हैं। चेतन उन्हें लेकर उनका दुरुपयोग करते हैं। तब भगवान अपना आश्रय पाकर उज्जीवित होने के समर्थ अपौरुषेय नित्य निर्दोष स्वयं प्रमाणीभूत वेदों को, उनके विशदीकरण करनेवाले शास्त्र इतिहास व पुराणों को प्रचार में लाये। उन शास्त्र आदि के अभ्यास के लिये कई योग्यताओं की आवश्यकता हुई। उन मार्गों के जरिये ज्ञान पैदा होकर चेतनों का उज्जीवित होना असंभवसा मालुम हुआ। इसीको दिल में रखकर सकल शास्त्र आदि के तात्पर्यों को संग्रह के रूप में, जैसे ये चेतन आसानी से जान सके, स्वरूप उपाय और पुरुषार्थों का वास्तविक ज्ञान बतानेवाले रहस्यत्रय को भगवान ने खुद आचार्य होकर प्रकाशित करके कृपा की है।

भगवान ने उनमें तिरुमंत्र को बदरिकाश्रम में अपने अंशभूत नर को प्रकाशित किया। द्वय को श्रीविष्णु लोक में स्व धर्मपत्नी लक्ष्मी देवी को प्रकाशित किया और 'चरमश्लोक' को रथ के ऊपरी भाग पर अपने आश्रित भक्त अर्जुन को प्रकाशित किया।

इसलिये ''लक्ष्मीनाथ समारंभाम्'' इत्यादि से शुरु करके गुरु परंपरा में ईश्वर का अनुसंधान किया जाता है।

गुरु के उपदेश से रहस्यत्रय आसानी से ग्रहण करने योग्य होता है। अर्थ उपदेश से सुग्रह होता है। उसको जानने से ही सबका उज्जीवन होता है। इस रहस्यत्रय के विषय में पूर्वाचार्यों ने परंपरा से जो उपदेश दिये उन रहस्यों के जो विषय बताये गये उन सबको सब लोगों के सुलभ और साफ-साफ जानने के ढंग में कृपा से श्री पिल्लै लोकाचार्य ने इस ग्रन्थ में बताया।

इसके पहले इन तीन रहस्यों के तीन ग्रन्थों में बताया। उनमें "यादृच्छकपडि" बहुत संक्षिप्त रूप में हो गया। "परन्दनपडि" का रूप बहुत विस्तार हो गया। "श्रियः पति पडि" यद्यपि ऊपर के दोनों दोषों से मुक्त है पर संस्कृत वाक्यों से भरा पडा है। अतः स्त्रियाँ और आम लोग उसे पढकर जान नहीं सकते। इन तीन दोषों से मुक्त औरेक प्रबन्ध की रचना करने का निश्चय किया। सब के बाद इस मुमुक्षुपडि नामक ग्रन्थ का ग्रथन किया। उन तीनों ग्रन्थों के रहने पर भी सब लोग इसी ग्रन्थ का अध्ययन करते हैं। जो विशेष अर्थ उन तीनों में नहीं बताये गये वे इसमें विद्यमान हैं।

श्रीमते रामानुजाय नमः

मुमुक्षुपडि का उपोद्घात

१. मुमुक्षुवुक्कु अरियवेण्डुम् रहस्यम् मून्रु।

जो मोक्ष में इच्छा रखते हैं उन्हें मुमुक्षु कहते हैं। उनको तीन रहस्य अवश्य जानना चाहिये।

स्वज्ञानं प्रापकज्ञानं प्राप्यज्ञानं मुमुक्षुभिः।
ज्ञानत्रयमुपादेय मेतदन्यत्र किञ्चन॥

स्व स्वरूप का ज्ञान, उपाय स्वरूप का ज्ञान, पुरुषार्थ स्वरूप का ज्ञान अवश्य जानना चाहिए। इनके सिवा जानने की चीज औरेक नहीं है। तिरुमंत्र, द्वय व चरमश्लोक इन तीनों को रहस्य कहते हैं। ये तीनों वेदांत के परमसार बतलानेवाले हैं। अतः परम गोपनीय होते हैं। आगे इनके अर्थ को बतलाते समय स्पष्ट हो जाता है।

२. अदिल प्रथम रहस्यम् तिरुमंत्रम्।

उनमें पहला रहस्य तिरुमंत्र है।

"मंतारं त्रायत इति मंत्रः" जो शब्दशक्तिसे अर्थज्ञान से अपने अनुसंधान करनेवाले की रक्षा करता है वह मंत्र कहलाता है। यह मत्र चेतन का निजस्वरूप बतलाता है। 'अनन्यशरणत्व' 'अनन्यार्हशेषत्व' और 'अनन्यभोग्यत्व' रूपी तीन अकारों को बतलाता है। चेतन के स्वरूप के यथार्थ ज्ञान पहुँचानेवाला है, अतः यह प्रथम रहस्य है। अधिकारी की योग्यता इसी से होता है।

३. तिरुमन्त्त्ति नुडय शीरमैक्कु प्पोरुम्बड़ि प्रेमत्तोडेपेणि यनुसंधिक्कवेणुम्।

तिरुमंत्र के गौरव के अनुकूल प्रेम के साथ आदर कर इसका अनुसंधान करना चाहिये।

"ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च। सर्वमक्षान्तरस्थम्" के अनुसार यह मंत्र सकल वेद का संग्रह स्वरूप है।

"मंत्राणां परमो मंत्रः गुह्यानां गुह्यमुत्तमम्
पवित्रं च पवित्राणां मूलमंत्रः सनातनः ॥

अर्थात् सभी मंत्रों में यह मंत्र उत्तम है गोपनीय वस्तुओं में अत्यन्तगोपनीय है। पवित्र पदार्थों में बडा पवित्र यह सनातन मूल मंत्र है। "मंत्रम् यत्नेन गोपयेत्"। कोई भी मंत्र यत्न से छिपा रखाना चाहिए।

४. मंत्रत्तिलुम् मंत्रत्तुक्कुल्लीडान वस्तुविलुम् मंत्रप्रदातान आचार्यन् पक्कलिलुम् प्रेमम् कनक्क वुण्डानाल् कार्यकरमावतु ॥

मंत्र के विषय में मंत्र के अन्दर रहनेवाले अर्थ वस्तु और मंत्र प्रदाता आचार्य के विषय में बडे प्रेम से श्रद्धा रखी जाय तो बहुत बडा लाभ और सफलता मिलेगी।

मंत्रे तद्देवतायाञ्च तथा मंत्रप्रदे गुरौ।
त्रिषु भक्तिः सदा कार्या सा हि प्रथमं साधनम् ॥

मंत्र मंत्र के अर्थरूप देवता और मंत्र के उपदेश करनेवाले गुरु के विषय में हमेशा भक्ति के साथ रहना चाहिए। यह कार्य साधना का प्रथम सोपान है।

५. संसारिकळ् तन्नैयुम् ईश्वरनैयुम् मरन्दु ईश्वर कैंकर्य तैयुमिळ्न्दु इळ्न्दो मेगर विळ्वुमिनि्रक्के, संसारमाकिरपेरुङ्गडलिये विळ्न्दु नोवुपड, सर्वेश्वरन् कृपैयाले, इवरकळ् तन्नैयरिन्दु करैमरम् शेरुंबडि ताने शिष्यनुमाय् आचार्यनुमाय् निन्रु, तिरुमंत्रत्तै वेळियिट्टरुळिनान् ॥

संसारी चेतन अपने को और ईश्वर के कैङ्कर्य को भूलकर इसका दुःख भी छोडकर संसार रूपी महासमुद्र में डूबकर दुःख पाते हैं तो तब सर्वेश्वर ने स्वभाविक कृपा से चेतन के अपने को जानकर वैकुण्ठ पाने के लिए खुद शिष्य होकर और आचार्य होकर इस महामंत्र को प्रकाशित किया। इससे मूलमंत्र का वैभव बताया गया।

दासभूताः स्वतः सर्वे ह्यात्मानः परमात्मनः।
नान्यथालक्षणं तेषां बंधे मोक्षे तथैव च॥

सभी चेतन आत्मा परमात्मा के दास हैं। वे संसार में रहै या वैकुण्ठ में इसमें शक नहीं है कि सभी चेतन श्रीमन्नारायण के शेष भूत दास हैं। "पतिं विश्वस्य" परमात्मा सारे विश्व के स्वामी होने के नाते "स्वामित्वं ब्रह्मणि स्थितम्" — परमात्मा में स्वामित्व रहता है। तो भी चेतन निरुपाधिक शेषी सर्वेश्वर को भूल जाते हैं। "मरन्दे नुन्नैमुन्नम्" के अनुसार स्वतः सिद्ध संबन्ध को भूल जाते हैं। अतः ईश्वर की सेवा को भूल जाते हैं।

"संसार सागरं घोर मनन्तक्लेशभाजनम्"। यह संसार बहुत से दु.खों से भरा रहता है। बहुत डरावना है।

"एवं संसृति चक्रस्थे भ्राम्यमाणे स्वकर्मभिः,
जीवे दुःखाकुले विष्णोः कृपा काप्युपजायते॥

जब जीव अपने कर्मों के अनुसार संसाररूपी चक्र में गिरकर दुःखी होता है तब ईश्वर में निर्हेतुक कृपा पैदा होती है।

इस कृपा के कारण भगवान ने चेतनों को परमपद स्थान देने के ख्याल से स्वयं शिष्य होकर और आचार्य होकर इस मंत्र को प्रकाशित किया। यह मंत्र नित्य है। इसका न आदि न अंत। अतः 'प्रकाशित किया गया' बताया गया।

६. शिष्यनाय् निन्रतु शिष्य निरुक्कु मिरुप्पु नाट्टार
अरियामैयाले अत्तै यरिविक्कैकाक॥

शिष्य होकर अवतार लेने का उद्देश्य है कि शिष्य के गुण आदि के लोगों से न जानने से शिष्य का ढंग दुनिया में प्रकाशित करना है।

आस्तिको धर्मशीलश्च शीलवान् वैष्णवः शुचिः।
गंभीरः चतुरो धीरः शिष्य इत्यभिधीयते ॥

शिष्य के लक्षण हैं — आस्तिक्य बुद्धिवाले हों। धर्मस्वभाव शक्ति संपन्न, विष्णु भक्त, शारीरिक और मानसिक शुचिवाला हो। गंभीर चतुर और धैर्यवान व्यक्ति ही शिष्य हो सकता है।

शरीरं वसु विज्ञानं वासः कर्म गुणान्सून्।
गुर्वर्थं धारयेत् यस्तु स शिष्य इत्यभिधीयते ॥

जो शरीर, धन ज्ञान वस्त्र, काम गुणों और प्राणों को गुरु के लिये धारण करते हैं वे शिष्य कहलाते हैं। आचार्य होकर आदेश देने मात्र से उतना प्रभाव लोगों पर नहीं पडता जितना शिष्य होकर आचरण में लाने से होता है।

७. सकल शास्त्रङ्गलालुम् पिरकुं ज्ञानम् स्वयमार्जित-म्बोले, तिरुमंत्रत्तालुमपिरकुम् ज्ञानम् पैतृकधन-म्बोले।

सभी शास्त्रों से मिलनेवाला ज्ञान खुद मेहनत करके कमाये हुए धन की तरह श्रमसाध्य होता है। मंत्रोपदेश से मिलनेवाला ज्ञान पितृधन के बराबर बिना श्रम के मिलनेवाले धन के बराबर होता है।

शास्त्र ज्ञानं बहुक्लेशम् बुद्धेश्चलन कारणम्।
उपदेशाद्धरिं ध्यात्वा विरमेत्सर्वकर्मसु ॥

शास्त्रों के अध्ययन से होनेवाला ज्ञान मुश्किल से होता है। कभी-कभी बुद्धि की चञ्चलता भी होती है। अतः सद्गुरु का उपदेश पाकर सभी कामों से बुद्धिमान को अलग होना चाहिए। अब तक मंत्र का वैभव बताया गया। आगे इसका बडप्पन बताया जाता है।

८. भगवन्मंत्रङ्गळ्ताननेकङ्गळ् ॥

जिस प्रकार भगवान के गुण अनन्त हैं चेतनों के जन्म अनन्त हैं। उसी प्रकार भगवान के मंत्र भी अनन्त हैं।

वेदों ने ऋषियों ने आळ्वारों ने और आचार्यों ने इसका आदर किया। व्यापक मंत्रों में इसको पहले पहल विष्णु गायत्री में बताया गया है। जैसे "विश्वं नारायणम्" ..... "नारायणम् परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः।" इत्यादि। जैसे महर्षियों ने बताया। "नारायणायेति शब्दोऽस्ति, वागस्ति वशवर्तिनी। तथापि नरके घोरे पतंतीति किमद्भुतम्।" आळ्वार ने बताया "वण् पुकळ नारणन् शोल्वनारणन्"।

१४. वाच्यप्रभावम्बोलेन्रु वाचक प्रभावम्॥

यह मंत्र नारायण का वाचक है। यह वाच्य नारायण से भी बढकर है। अतः वाचक प्रभाव वाच्य प्रभाव से बढकर है।

१५. अवन् दूरस्थनालुम् इतु किट्टि निन्रतुम्॥

वाच्यभूत नारायण के दूर रहने पर भी मंत्र का उच्चारण करने से झट वांछित फल मिल जाता है।

१६. द्रौपदिक्कु आपत्तिले पुडवै शुरन्ददु तिरुनाममिरे॥

द्रौपदी को वाचकप्रभाव के कारण ही साडियाँ मिल गईं। रक्षा हो गयी। विपत्ति में तिरुनाम ने ही द्रौपदी को साडियाँ दीं।

१७. शोल्लुम् क्रममोळिय च्चोन्नालुम् तन् स्वरूपम् केडनिल्लातु।

उच्चारण करने का क्रम छोडने पर भी अपने स्वभाव को नहीं बिगाडने देता। "सांकेत्यं पारिहास्यञ्च स्तोभं हेळनमेव च वैकुंठनामग्रहणम् दोषाशेषहरं विदुः॥" अर्थात् — दूसरे के नाम से संकेत केलिए अथवा हंसी केलिए व दूसरों को नीचा दिखाने केलिए वा जो नारायण शब्द ग्रहण करेगा उसके सारे पाप दूर हो जाते हैं।

१८. इतुतान् 'कुलंदरुम' एन्निरपडिये एल्लावपेक्षितङ्गळ् कोडुक्कुम्।

९. अवैतान् व्यापकङ्गलेन्रुम् अव्यापकङ्गळेन्रुम् इरण्डु-
वर्गम्।

वे तो व्यापक और अव्यापक के दो भेदों से विराजमान हैं।

१०. अव्यापकङ्गळिल् व्यापकङ्गळ् मून्रु श्रेष्ठङ्गळ्॥

अव्यापक मंत्रों से व्यापक मंत्र तीन श्रेष्ठ हैं। "नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि, तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।" इस विष्णु गायत्री के नारायण वासुदेव और विष्णु शब्द से ओं कार से मिश्रित होकर तीन मंत्र बनते हैं। जैसे — ओं नमो नारायणाय, ओं नमो भगवते वासुदेवाय, ओं नमो विष्णवे।

११. इवै मून्रिल्लुम् वैत्तुकोण्डु पेरिय तिरुमंत्रम् प्रधानम्॥

इन तीनों में महत्तर तिरुमंत्र मुख्य है। यह उस गायत्री में पहले बताया गया है और अर्थपूर्ति से भरा हुआ है। "नास्ति चाष्टक्षरात् परः" "न मंत्रोऽष्टक्षरात् परः" के अनुसार अष्टाक्षरी मंत्र से बढकर और कोई मंत्र मुख्य नहीं है।

१२. मत्तुल्लवै इरण्डुक्कुम् अशिष्ट परिग्रहमुम् अपूर्ति-
युमुण्डु॥

बाकी दोनों में अशिष्ट परिग्रह है। जो सदाचरण में नहीं है उनको अशिष्ट कहते हैं। अशिष्ट लोग बाकी दोनों का ग्रहण करते हैं। मंत्र में जो पूरा अर्थ होना चाहिए वह भी उन दोनों में नहीं है। अर्थात् अपूर्ति है। अतः बाकी दोनों दोष युक्त हैं। आच्चम्पिल्लैजीने बताया कि यह प्रधान मंत्र उन दोनों मंत्रों के बराबर नहीं है। यह व्याप्य पदार्थों के साथ व्यापन का प्रकार व्याप्ति फल के साथ व्यापक के गुणों को भी बताता है। उनसे इसमें अर्थ की संपूर्णता भरी हुई है। दूसरे व्यापक मंत्रों में अपूर्ति है। तिरुमंत्र में अर्थ पूर्ति है।

१३. इत्तै वेदंगुळुम् ऋषिकळुम् आळ्वारकळुम्
आचार्यकळुम् विरुम्बिनारकळ्॥

श्री तिरुमंगयाळवार की श्रीसूक्ति 'कुलंदरुम' इत्यादि के अनुसार यह सभी इरादाओं को देनेवाला है।

१९. ऐश्वर्य कैवल्य भगवल्लाभङ्गळै आशैप्पट्टवरकळुक्कु अवत्तै कोडुक्कुम्।

जो ऐश्वर्य को या कैवल्य या भगवत्प्राप्ति को चाहता है उसे वह देता है।

इह लौकिकमैश्वर्यं स्वर्गाद्यं पारलौकिकम्।
कैवल्यं भगवंतं च मंत्रोऽयं साधयिष्यति॥

इस लोक का या परलोक का ऐश्वर्य आत्मप्राप्ति रूप कैवल्य परमपुरुषार्थ रूप भगवत्प्राप्ति चाहनेवालों को जप तप होम आदि से स्वयं साधन होकर सभी पुरुषार्थों को देता है।

२०. कर्मज्ञान भक्तिकळिये इळिन्दवरकळुक्कु विरोधियै पोक्कि अवत्तैतलैकट्टि कोडुक्कुम्।

कर्म ज्ञान भक्ति या किसी साधना में डूबे रहनेवालों को उनके शत्रुओं को दूर करके उनको सफली भूत करता है।

२१. प्रपत्तिरेयिळिन्दवरकळुक्कु स्वरूपज्ञानत्तैप्पिरप्पित्तु कालक्षेपत्तुक्कुम् भोगत्तुक्कुम् हेतुवा यिरुक्कुम्॥

प्रपत्ति के मार्ग में रहनेवालों को स्वरूप ज्ञान पहुंचाकर समय के सद्व्यय के लिए व अनुभव केलिए कारणीभूत होता है।

२२. मत्तेल्लाम् पेशिलुम्। एनि्गर पडिये अरियवेण्डुमर्थमेल्लाम् इतु कुळ्ळे युंडु॥

मत्तेल्लाम् पेशिलाम (सभी बातें इसी में हैं।) के अनुसार जानने योग्य सभी अर्थ इसमें रहते हैं। "ज्ञातव्य सर्वार्थप्रतिपादक रूपी।" इस मंत्र का वैभव बताया गया।

२३. अतावतु अञ्जर्थम्।

वे तो पांच अर्थ हैं। वे ये हैं — (१) स्वस्वरूप (२) परस्वरूप (३) पुरुषार्थ स्वरूप (४) उपायस्वरूप (५) विरोधि स्वरूप। रूप अर्थ पञ्चकम —

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तश्च प्रत्ययात्मानः।
प्राप्त्युपायं फलप्राप्तिः तथा प्राप्ति विरोधि च।

परस्वरूप, जीवात्मा का स्वरूप, पाने के उपाय का स्वरूप, प्राप्ति का फलस्वरूप और प्राप्ति के विरोधि रूप पांच हैं। इन पांचों को अर्थ पञ्चकम् कहते हैं।

२४. पूर्वाचार्यकळ् इतिल् अर्थमरिवतर्कुमुन्बु तङ्गळै प्पिरन्दारकळाक निनैर्तिरारकळ्, इतिलर्थज्ञानम् पिरन्द पिन्बु "पिरन्दपिनमरन्दिलेन्" एन्गिरपडियै इत्तैयोळिय वेरोन्राल् कालक्षेपम् पण्णियरियाकळ्॥

नाथ यामुन आदि हमारे पूर्वाचार्य लोग इसका अर्थ जानने के पहले अपने को पैदा हुआ से नहीं समझे। इसका अर्थ जानने के बाद "पिरन्दपिन् मरन्दिलेन्" गाथा में बताया हुआ अनुसार इसको छोडकर औरेक मंत्र से समयगवाँना नहीं जाना। हमेशा इसी मंत्रार्थ का अनुसंधान करते हुए अपना बाकी जीवन बिताया।

२५. वाचकत्तिल् काट्टिल वाच्यत्तिले ऊन्रुकैक्कडि ईश्वरणे उपाय उपेयमन्रु निनैतिरुक्कै॥

शब्द की अपेक्षा वाच्य (भगवान) में बडा हठ करनेवाले होने के कारण भगवान को ही उपाय और उपेय मानकर रह जाना है। यहाँ तक "तिरुमंत्रत्तिनुडय शीमैक्किप्पोम्बडि" के अनुसार इस मंत्र का वैभव बताया गया। अनुसंधान करने से फल मिलता है। ईश्वर ने खुद शिष्य होकर और आचार्य हो कर और आचार्य होकर इसको प्रकाशित किया। अतः इसका बडप्पन ज्ञात हुआ। सभी शास्त्रों और वाच्यभूत भगवान से बढकर इसकी महिमा यह है कि क्रम छोडकर उच्चारण करने पर भी यह मंत्र फल देता है। जितने फल मांगे जाते हैं वे सब इनके

अनुसंधान करने से मिलते हैं। कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि मोक्ष प्राप्ति के दूसरे उपाय हैं। उन सबके फल देने में यह सहकारी होता है। चेतन को जितने अर्थ जानने चाहिए उन सभी अर्थों को यह बताता है। इसलिए इस मंत्र की महिमा अकथनीय है। अतएव पूर्वाचार्यों ने इसके अनुसंधान में हमेशा दृढचित्त हो समय बिताया।

२६. इतु तन्नि च्चोल्लुकिर वर्थम् स्वरूपमुम् स्वरूप-रूपानुमान प्राप्यमुम् स्वरूपमुम् उपायमुम् फलम् मुन्नवुमाम्।

इस मंत्र में ये अर्थ बताये जाते हैं। (१) आत्मा का शेषत्व व पारतंत्र्य रूपी स्वरूप (२) इस स्वरूप के लायक कैंकर्य (सेवा) रूपी प्राप्य या शेषत्व रूपी स्वरूप के अनुरूप उपाय व उपाय से मिलनेवाला फल। प्रणव से स्वरूप, नमः से उपाय, नारायण पद से फल बताये गये हैं।

२७. फल मिरुक्कुम्बडि प्रमेयशेखरतिलुम् अर्चिरादिगळि-युम् शोननोम्।

इस आत्मा का प्राप्यमान फल तो अर्चिरादिमार्ग से परमपद में जाकर परिपूर्ण भगवदनुभव पाकर उससे मिलनेवाले आनन्द विशेष से किये जानेवाले सेवा कार्य प्रमेयशेखर नामक ग्रन्थ में और अर्चिरादि गति नामक ग्रन्थ में बताये गये हैं।

२८. इतु तानेट्टु अक्षरमाय मूनरु पदमाय इरुक्कुम्।

यह मंत्र आठ अक्षरों से और तीन पदों से प्रकाशमान है। "ओं" इत्येकाक्षरम् नम इति द्वे अक्षरे नारायणायेति पञ्चाक्षराणि।" इसके अनुसार आठ अक्षरवाला हुआ। "ओं नमः नारायणाय" इति तीन पदवाला हुआ।

२९. मूनरु पदम मूनरु अर्थत्तै च्चोल्लु किरतु।

तीनों पद तीन अर्थों को बताते है।

३०. अतावतु शेषत्वम् पारतंत्र्यमुम् कैंकर्यमुम्।

वे तो शेषत्व पारतंत्र्य और सेवाभाव हैं।

३१. इतिल् मुतर्पदम प्रणवम्।

इसका पहला पद प्रणव 'ओं' है।

प्रणवाद्यं नमो मध्यम् नारायण पदान्तिकम्।
मंत्र मष्टाक्षरं विद्यात् सर्व सिद्धिकरं नृणाम्॥

प्रणव पहले पद के रूप में, 'नमः' मध्यम पद रूप में और नारायण तीसरे पद के रूप में रहते हैं। यह मंत्र सभी तरह की सिद्धियों को देनेवाला है।

३२. इतु 'अ' एन्रुम् 'उ' एन्रुम् 'म' एन्रुम् तिरुवक्षरम्।

इसके 'अ' 'उ' व 'म' तीन अक्षर हैं। अलग अलग रहने पर तीन अक्षर हो, तीन पद हो, तीन अर्थ बताते हैं। मिलकर रहने पर एक अक्षर एक पद हो एक अर्थ बताता है।

३३. मून्रुतामिळियिले तयिरै निरत्तु कडैन्दु वेण्णेय तिरुमाप्पोले मून्रुवेदत्तिलम् मून्रक्षरत्तैयुम् मेडुत्ततु।

तीन घड़ों में दही भरकर मथकर मक्खन निकालने के बराबर तीन वेदों से अक्षर निकाले गये।

भूरिति ऋग्वेदादजायत, भुव इति यजुर्वेदात्।
सुवरिति सामवेदात्, तानि शुक्राणयभ्यतपत्।
तेभ्यः अभितप्तेभ्य त्रयो वर्णा अजायन्त।
अकार उकार मकार इति।

"तानेकथा समभरत्तदेत दोमिति॥" ऋग्, यजुर, साम, तीनों वेदों से 'भू', 'भुव', 'सुव', तीन व्याहृतियों को बाहर निकाला अपने संकल्प से प्रजापति ने अकार, उकार व मकार तीन अक्षरों को प्रकाशित किया।

३४. आकैयालुम् सकल वेदसारम्।

इसलिए सभी वेदों का सार भूत है।

३५. इतिल् अकारम् सकलशब्दत्तुक्कुम् कारणमाय् नारायणपदत्तुक्कु संग्रहमायिरुक्कैयाले सकल जगत्तुक्कुम् कारणमाय् सर्वरक्षकनान वेम्बेरुमानै च्चोल्लुगिरतु।

यह अकार सभी शब्दों का कारण हो नारायण पद का संग्रह रूप है। अत सारे जगत् का कारण व सर्वरक्षक नारायण को बताता है।

"नामरूपं भूतानां कृत्यानाञ्च प्रपञ्चनम् वेद शब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः।"

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।"

देवताओं के और कई चेतनों के नाम रूप और इनके कार्यों को भगवान चतुर्मुख ने वेद शब्दों से ही बनाया। अतः लोक में रहनेवाले सभी शब्दों का कारण वेद है। जिससे ये चेतन पैदा होते हैं और मरते हैं नारायण शब्द से बताया जाता है कि उनका कारण सर्वरक्षक ईश्वर हैं। उसका सार रूप अकार वही बताता है। इसमें इस अक्षर के प्रकृत्यर्थ कारणत्व और धात्वर्थ रक्षकत्व बताये गये हैं।

३६. रक्षिक्कैयावतु विरोधियैप्पोक्कु कैयुम् अपेक्षितत्तै क्कोडुकैयुम्।

रक्षा माने विरोधी को निकाल देना और वांछितों का प्रदान करना है। अनिष्ट निवर्तकता और इष्टप्रापकता दोनों ईश्वर में हैं।

३७. इवै इरंडु चेतनर् निनूर निनूर वळुवु क्कोडायिरुक्कुम्।

ये दोनों चेतनों की गति और स्थितियों के अनुसार रहते हैं। उस उस चेतन के अधिकार के योग्य रहते हैं।

३८. संसारिकळुक्कु विरोधिशत्रु पीडादिकळ् अपेक्षितमत्र-

पानादिकळ्, मुमुक्षुक्कळुक्कु विरोधि संसार संबन्धम्
अपेक्षितम् परमपदप्राप्ति, मुक्तर्कु नित्यर्कु विरोधि
कैङ्कर्यहानि अपेक्षितम् कैंकर्यवृद्धि।

संसारियों के विरोधी हैं शत्रु पीडा आदि, अपेक्षित अन्नपान आदि हैं। मुमुक्षुओं को विरोधी हैं संसार के संबन्ध, वांछित विषय हैं, परमपद प्राप्ति और मुक्तों के व नित्यों के विरोधी कैंकर्यहानि — सेवा हानि और अपेक्षित विषय है कैङ्कर्यवृद्धि।

संसारी लोग देह को ही आत्मा समझते हैं, शब्दादि विषयों का अनुभव ही जीवन मात्र समझते हैं। ये शत्रु और शरीर की पीडा से डरते हैं। इनका निवारण आवश्यक माना जाता है। ये अन्न पान, आराम आदि को चाहते हैं। मोक्ष में इच्छा रखनेवाले इस दुनिया का संबन्ध छोडना चाहते हैं, वैकुंठ में जाना चाहते हैं।

जो मुक्त हैं व नित्य हैं उन्हें भगवान की सेवा की हानि ही विरोधी है। और हमेशा भगवान की सेवा करते रहना ही वांछित विषय है।

३९. ईश्वरनै योळिन्दवरकळ् रक्षकरल्लरेन्नुमिडम् प्रपन्नप-
रित्राणत्तिले शोन्नोम्।

ईश्वर के सिवा कोई भी रक्षक नहीं है। यह विषय प्रपन्नपरित्राण नामक ग्रन्थ में बताया गया। ईश्वर निरुपाधिक बन्धु हैं। औपाधिक बन्धु माता पिता आदि हैं। इनको और दूसरी देवताओं को छोडकर भगवान में ही श्रद्धा रखनी चाहिए।

४०. रक्षिक्कुंनोतुपिराट्टिसन्निधिवेण्डुकैयाले इतिले श्री-
संबन्धम् अनुसंधेयम्।

रक्षा करते समय लक्ष्मी का संबन्ध अनिवार्य होता है। अतः अकार के अर्थ में श्री का संबन्ध जोडना चाहिए।

लक्ष्म्या सह हृषीकेशो देव्या कारुण्य रूपया।
रक्षकः सर्वसिद्धांते वेदान्तेऽपि च गीयते॥

रक्षाकरनेवाले ईश्वर चेतनों की रक्षा की दशा में चेतनों के अपराध देखकर अपनी निरंकुश स्वतंत्रता को देखकर उपेक्षा न करे। अतः उन्हें कृपा पैदा करने के लिए लक्ष्मी का समीप में रहना आवश्यक माना जाता है।

४१. अत्र भगवत् सेनापतिमिश्रवाक्यम् 'अवन् मारवु-
विट्टुप्पिरियल् इव्वक्षरम् विट्टुप्पिरतु।

इस विषय में सेनापति मिश्रने कहा, "अगर लक्ष्मीनारायण के वक्षःस्थल को छोडकर रहेगी तो यह अकार अक्षर भी श्रीसंबन्ध मे मुक्त रहेगा। श्री सूक्ति "अकलकिल्लेनिरैयुम्' सर्वेश्वर को छोडकर क्षणकाल भी नहीं रहूँगी।

४२. भर्ताविनुडैय पडुक्कैयैयुम् प्रजैयिनुडय तोट्टिलैयुम्
विडाते यिरुक्कुम् माता वैप्पोले प्रथमचरमपदङ्ङळे
विडाते यिरु क्कुमिरुप्पु।

पति की शय्या को और बच्चे के झूले को नहीं छोडनेवाली माता के समान पहले और आखिरी पदों को नहीं छोडकर रहना। शेषभूत अपने स्वरूप के अनुकूल एक ओर पति को नहीं छोडती और दूसरी ओर चेतन भूत मकार का संबन्ध भी रखती है। लक्ष्मी इस प्रकार दोनों के बीच में रहती है।

४३. श्रीनन्दगोपरैयुम् कृष्णरैयुम् विडाते यशोदैप्पिराट्टियै-
प्पोले।

कवि उदाहरण देकर समझाता है। खुद पत्नी होकर यशोदा नंदगोप की शय्या को दूसरी ओर कृष्ण की झूले को संभालती रहती है।

४४. ओरुवनडिमै कोळ्ळंबोतु गृहिणिक्कैनूरनूरे आवणै-
योलै येळुतुवतु आकिलुमपणिशेयवतु गृहिणिक्किरे
अतुपोले नाम् पिराट्टि क्कडिमैयायिरुक्किम्बडि॥

दुनिया में कोई गृहस्थ चपरासी को रखता है तो अपने नाम पर ही खरार नामा लिखवाता है। फिर भी काम करना गृहिणी के लिए ही। उसी प्रकार हमको लक्ष्मी के दास भूत होना चाहिए।

४५. आकप्पिरित्तुनियल्लै।

इसलिए एक दूसरे को छोड कर रहना असंभव है।

४६. प्रभैयैयुम् प्रभावानैयुम् पुष्पत्तैयुम् मणत्तैयुम्बोले।

कांति सूर्य को और सुगंध पुष्प को किसी प्रकार छोडकर नहीं रहतीं, उसी प्रकार लक्ष्मी नारायण को छोडकर नहीं रहती। "अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा" जिस प्रकार कांति सूर्य को छोडकर नहीं रहती उसी प्रकार मैं (सीता) राम को छोडकर नहीं रह सकती।

राम का वचन है। "अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा।" मुझे छोडकर सीता नहीं रह सकती।

४७. आक इच्चेर्ति उद्देश्यमाय् विट्टतु।

इसलिए इस मिथुन के मिलकर रहने में महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। इन दोनों को मिलाकर ही भक्ति या प्रपत्ति करनी चाहिए। रावण ने राम को छोडकर सीता मात्र का आदर किया और शूर्पणखा सीता को छोडकर राम मात्र की श्रद्धा करने लगी, तो दोनों नष्ट हुए। विभीषण ने तो दोनों की शरण ली तो रक्षित व सुखी होकर राज्य पाया।

४८. इतिले चतुर्थी येरि क्कळियुम्।

इस अकार पर चतुर्थी विभक्ति आकर लुप्त होती है। व्याकरण नियम के अनुसार (सुपां लुपि) समास के बीच में विभक्तियाँ लुप्त होती हैं।

४९. चतुर्थी येरिनपडि एन्नेन्निल्।

चतुर्थी आकर लुप्त होने का क्या प्रमाण है?

५०. नारायण पदत्तुक्कु संग्रहमाकैयाले एन्नु।

उसका जवाब इसमें बताया जाता है कि 'नारायणाय' पद के अंत में होनेवाली चतुर्थी है। क्योंकि यह 'अकार' नारायण शब्द का संग्रहरूप है।

५१. इत्ताल् ईश्वरनुक्कु शेषमेन्निगरतु।

इससे मालुम होता है कि मकारार्थ भूत जीवात्मा नारायण का शेषभूत है।

५२. शेषत्वं दुःखरूपमाक वन्नरो नाट्टिल कण्णिगरदे-न्निल्।

"सर्वं परवशम् दुःखम्" के अनुसार शेषत्व दुःख रूप में दुनिया में दिखाई पडता है।

५३. अन्द नियममिल्लै उकन्दविषयत्तुक्कु शेषमाय् इरुक्कु-मिरुप्पु सुखमाक क्कण्गैयाले।

ऐसा नियम तो नहीं है। अभिमत विषय में शेषभूत होकर रहना सुख के रूप में दिखाई पडता है। अतः ऐसा नियम नहीं है कि शेषत्व हमेशा दुःखकर ही होगा।

५४. अकारत्तिले कल्याणगुणगणङ्गळै च्चोल्लुकैयाले शेषत्वमुम् गुणत्ताले वन्दतु।

अकार में कल्याण गुणों के बताये जाने से यह शेषत्व गुणों के कारण आया हुआ समझना चाहिए। नारायण रक्षक है। उसमें समस्त कल्याण गुण विद्यमान हैं। अतः जीव शेषभूत हुआ।

५५. शेषत्वमे आत्मावुक्कु स्वरूपम्।

शेष भूत होना ही आत्मा का स्वरूप है।

स्वत्वमात्मनि सञ्जातं स्वामित्वं ब्रह्मणि स्थितम्।

दासभूता स्स्वतः सर्वे ह्यात्मानः परमात्मनः।
नान्यथा लक्षणं तेषां बन्धे मोक्षे तथैव च।

परमात्मा स्वामी है और आत्मा उसकी वस्तु है। और सभी आत्मायें परमात्मा के नौकर हैं। बद्धदशा में या मोक्ष दशा में भी उनका दूसरा लक्षण नहीं है।

५६. शेषत्व मल्ल तर्पोतु स्वरूपमिल्लै।

जब आत्मा का शेषत्व नहीं रहा तब उसका स्वरूप ही नहीं रहता।

५७. आत्मापहारमावदु स्वतंत्रमेनिर निनैवु। स्वतंत्र मांबोदु इल्लेयाय् विडुम्।

अपने को स्वतंत्र मानना ही आत्मापहार नामक दोष है। स्वतंत्र समझने से स्वरूप ही नष्ट होता है।

योऽन्यथा सन्त मात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते।
किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा॥

जो आत्मा किसी प्रकार रहते अपने को दूसरे प्रकार मानते हैं यानी शेषभूत व अस्वतंत्र अपने को स्वतंत्र मानते हैं वे चोर हैं। वे आत्मापहारी हैं। उनसे दुनिया में कौनसा पाप न किया जाता? सभी अक्षरों की प्रकृति अकार है। इस प्रकृत्यर्थ से नारायण को कारणत्व सिद्ध होता है। 'अव' रक्षणे धातु के अर्थ से रक्षकत्व रूपी लक्षण मालुम होता है। अर्थ के बल से श्रियः पतित्व' की सिद्धि होती है।

प्रत्यय के बल से चेतन के शेषत्व के खिलाफ रहनेवाला शेषित्व का ज्ञान होता है। इस प्रकार अकार के कारणत्व रक्षकत्व, श्रियः पतित्व, शेषित्व के अर्थ मालुम होते हैं। इनसे विशिष्ट नारायण ही है। इस प्रकार अकार का अर्थ सविवरण पूरा हुआ।

५८. स्थानप्रमाणत्ताले उकार मवधारणार्थम्।

स्थान के प्रमाण से उकार का अर्थ एवकार का अर्थ है।

५९. इत्ताल् पिरर्कु शेषमेनि्गरतु।

इससे मालुम होता है कि यह आत्मा दूसरों का शेष भूत नहीं है।

६०. पेरियापिराट्टियार्कु शेष मेनि्गरदेन्नुम्।

कुछ लोग कहते हैं कि यह आत्मा लक्ष्मी की शेषभूत होती है। पांचरात्र संहिता में बताया गया कि —

अकारश्चितृस्वरूपस्य विष्णोर्वाचक मुच्यते।
उकारश्चितृस्वरूपायाः श्रियो वाचि तथा विदुः ॥

अकार विष्णु का वाचक है। उकार लक्ष्मी का वाचक है। मकार दोनों का दास भूत जीव है।

६१. अत्तिलुम् अन्यशेषत्व कळिकैये प्रधानम्।

ऐसा कहने की अपेक्षा अन्यशेषत्व निराकरण ही मुख्य है।

६२. देवरकळुक्कु शेषमानपुरोडाशत्तै नाय् क्किडुमाप्पोले ईश्वर शेषमान आत्मवस्तुवै संसारिकळुक्कु शेषमाक्कु-कै।

देवताओं को दिये जानेवाला पुरोडाश यानी यज्ञ में दिया जानेवाला आहुति पदार्थ कुत्ते को देने के बराबर ईश्वर का शेषभूत आत्मा को संसारी लोगों को देना है।

६३. भगवच्छेषत्व त्तिलुमन्यशेषत्वम् कळिकैये प्रधानम्।

भगवान की शेषत्व होने की अपेक्षा अन्यशेषत्व निराकरण ही मुख्य है। उकार का अर्थ स्पष्ट किया जाता है। लक्ष्मी के शेषभूत होने के कथन की अपेक्षा अन्य शेषत्व का निराकरण ही मुख्य है।

६४. मरन्दुम् पुरन्दोळामान्दन् एन्गैयाले।

आळवार का कथन है कि आदमी को भूलकर भी दूसरों को प्रमाण न करना चाहिए।

६५. इत्ताल् तनक्कुम् पिरर्कुम् उरित्तने निृगरक्कु।

इससे बताया जाता है कि वह अपने का और दूसरों का शेषभूत नहीं है। अतः उकार का अर्थ केवल अन्य शेषत्व का निराकरण ही है। यह अवधारणार्थ से मालुम होता है।

६६ मकार मिरुपत्तंजाक्षर माय ज्ञानवाचियुमायुरुक्कियाले आत्मावै च्चोल्लुगिरतु।

मकार पच्चीसवाँ अक्षर होता है। और ज्ञानवाचक भी है। अतः आत्मा को बताता है — वह तो मन-ज्ञाने नामक या मन्-अवबोधने नामक धातु से पैदा हुआ है। ज्ञानवाचक है। "पञ्चविंशोऽयं पुरुषः" "पञ्चविंश आत्मा भवति" "विज्ञानात्मा पुरुषः" अतः ज्ञान स्वरूपी है। अतः आत्मा को बताता है।

६७. इतुतान् समिष्टि वाचकम्।

यह तो समिष्टिवाचक है। त्रिविध आत्मा समूह को बताता है। शेषत्वरूपी धर्म तो आत्माओं का साधारण धर्म है। पहले समूह वाचक है।

६८. जात्येकवचनम्।

सारी जाति के बोध करने में एक वचन का प्रयोग किया जाता है। जैसे धान।

६९. इत्तालात्मा ज्ञातावेन्रुदेहत्तिल् व्यावृत्तिच्चोलित्तायत्तु।

इस मकार से मालुम होता है कि आत्मा जाननेवाला है। देह से विलक्षण है। अचेतन रूपी देह से यह आत्मा भिन्न है।

७०. देहत्तिल् व्यावृत्ति तत्त्वशेखरत्तिले शोन्नोम्।

तत्त्वशेखर नामक प्रबंध में 'आत्मा देह से भिन्न है' यह विषय साफ-सीफ बताया गया है।

७१. मणैत्तयुम् ओळियैयुम् कोण्डुपूवैयुम् रत्नत्तैयुम् विरुम्बुमाप्पोले शेषमेन्रात्मावै यादरिक्किरतु अल्लातपोतु 'उयिरि नार्कुरै विलम् एन्गिरपडिये त्याज्यम्। अतुतोन्र शेषत्वत्तै च्चोल्लि पिन्नैयात्मावै च्चोल्लुकिरतु।

सुगंध के कारण और कान्ति के कारण फूल और रत्न आदर किये जाते हैं। उसी प्रकार शेषभूत आत्मा का आदर करना चाहिए। आदर का शेषत्व कारण है। वैसा नहीं तो "उयिर नारकुरै विलम्" के अनुसार आत्मा त्याज्य होता है। इसलिए पहले शेषत्व को बताकर बाद को आत्मा को बताया जाता है।

७२. आक प्रणवत्ताल् 'कन्नपुरमोन्रुडैयानुक्कडियेन ओरुवर्कुरियेनो' एन्गिरपडिये जीव परसंबन्धम् शोल्लित्तु।

इसलिए प्रणव से जीव और परमात्मा का संबन्ध बताया जाता है। श्री तिरुमंगैयाळ्वार की श्री सूक्ति है "कण्णपुर में रहनेवाले स्वामी का दास हूँ। दूसरों का नहीं।' चतुर्थी के अन्तवाले अकार को "और अडियेन्" शेषत्व आश्रयवाचक मकार का अर्थ एवं "ओरुवरक्कुरियेन्" अन्यशेषत्व का निवारण करनेवाले उकार को बताकर जीव पर संबन्ध स्पष्ट किया गया है। शेष शेषी भाव संबन्ध बताया गया।

७३. इत्ताल् तामरैयाल् केळ्वन् नोरुवनैये नोक्कुमुणर्वु।

इससे श्री पोय्कैयाळ्वार की श्री सूक्ति तामरैयाळ्कोल्वन् ओरुवनैयै नोक्कु मुणर्वु" सार्थक होती है। तामरैयाळ् केल्वन् = अकारवाच्य होकर शेषत्व के विषयभूत श्रियःपति ओरुवनैयेनोक्कु = एक के बारे में लक्ष्यभूत ज्ञान, चतुर्थी विभक्तिसे व उकार से बताये जानेवाला अनन्यार्ह शेषत्व से आत्मा का भगवदेकपरत्व, उणर्वु = ज्ञान शेषत्व के आश्रयभूत मकार से ज्ञानस्वरूपी आत्मा को बतानेवाली श्रीसूक्ति के अनुसार जीवेश्वर का संबन्ध बताया गया है।

७४. अकारत्तालुम् मकारत्तालुम् रक्षकनैयुम् रक्ष्यत्तैयुम् शोल्लित्तु चतुर्थियालुम् उकारत्तालुम् रक्षण हेतुवान प्राप्तियैयुम् फलत्तैयुम् शोल्लित्तु।

अकार से रक्षक ईश्वर बताया जाता है। मकार से रक्ष्य भूत आत्मा वस्तु बताया जाता है। चतुर्थी विभक्ति से रक्षा के हेतुभूत शेषत्व रूपी संबन्ध प्राप्ति बतायी जाती है। इस प्रकार उकार से रक्षण हेतु भूत प्राप्ति और रक्षण फल बताये गये हैं। आत्मवस्तु सर्वेश्वर को अनन्यार्हि होकर उपयोगी होता है इससे रक्षण फल भी बताया जाता है।

७५. इनिमेल् प्रणवत्तै विवरिक्किरतु।

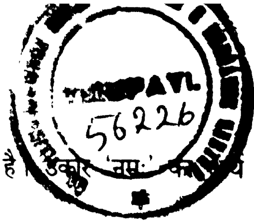
इसके बाद प्रणव का विवरण दिया जाता है। प्रणव-माने उक्तार्थ विशदीकारयुक्ता (अ)र्थान्तरबोधनम्। अर्थात् — बताये गये अर्थ का विशद रूप से औरेक अर्थ बताना विवरण कहा जाता है। ओंकार का विवरण आगे का मंत्र है।

७६. उकारत्तै विवरिक्किरतु नमस्सु। अकारत्तै विवरिक्किरे-तु नारायणपदम्। मकारत्तै विवरक्किरतु चतुर्थी नारपदमेन्रुम् शोल्लुवरकळ्।

'नमः' पद अन्यशेषत्व निराकरणार्थवाले उकार का विवरण है। नारायणपद जगत्कारण रक्षक व कल्याणगुणविशिष्ट लक्ष्मीपति अर्थवाले अकार का विवरण है। मकार का विवरण है "आय" रूपी चतुर्थी विभक्ति और नार पद है।

"ना किञ्चित् कुर्वतः शेषत्वम्" के अनुसार भगवत् संबन्धी किसी कार्य के किये बिना शेषत्व-सिद्धि नहीं होती। अतः चतुर्थी प्रार्थना रूप कार्य को बताती है। मकार का अर्थ आत्मा की नित्यता, एकरूपता. बहुत्व आदि से भरी हुई आत्मा का विवरण हैं। नारपद।

७६. A इनिमेल्ल् प्रणवत्तै विविक्किरतु उकारत्तै विविक्किरतु नमस्सु।



इसके बाद प्रणव का अर्थ बताया जाता है। उकार 'नमः' का अर्थ बताता है।

७६. B अकारत्तै विविक्किरतु नारायणपदम्। मकारत्तैविवि-
क्किरतु चतुर्थी नारपदमेन्र् शोल्लुवरकळ्।

अकार का अर्थ बताता है नारायणपद मकार का अर्थ बताता है चतुर्थी और नारपद्।

७७. अडैये विवरियातोळिकिरतु विरोधिपो यनुभविक्क-
वेण्डुकैयाले।

अक्षरक्रम से क्रमशः विवरण न देना विरोधि अहंकार आदि का निवारण करके उसके बाद अनुभव का विषय बताना अच्छा है।

७८. 'नमस्सु' 'न' एन्रुम् 'मः' एन्रु इरण्डुपदम्।

'नमः' मे न और म दो पद हैं।

७९. 'मः' एन्गिरवित्ताल् तनक्कुरिय नेन्गिरतु, 'न'
एन्रु अत्तैत्तविक्किरतु।

षष्ठी विभक्तियुक्त मकार से अपना दास मैं हूँ। बताया जाता है निषेधवाची 'न' से उसका निवारण कर देता है। मैं अपने लिए समर्थ नहीं हूँ।

८०. आक नमः एन्गिर वित्ताल् तनक्कुरिय नन्रेकिरतु।

अतः नमः पद से मालुम होता है मैं अपने लिए अर्ह नहीं हूँ।

८१. पिरर्क्कुरियनावन्रु तन्वैलक्षण्यत्तै काट्टि मीट्कलाम्
तनक्केन्रुमन्रु योग्यतैयुम् कूडविळयुम्।

जीव दूसरों का शेष भूत अपने को मानता है तब परमात्मा अपनी विलक्षणता दिखाकर यानी सर्वकारणत्व, सर्वरक्षकत्व और सर्व शेषित्वादि

को दिखाकर अपनी ओर आकर्षित कर सकता है पर जीव अपने को अपना दास मानता है। वह आकर्षण का सदवकाश भी नष्ट होता है।

८२. इत्ताल् विरोधियैकळिक्किरतु।

इससे विरोधि का निवारण हो जाता है।

८३. विरोधितान् मूनुरु।

वे विरोधी तीन हैं।

८४. अतावतु स्वरूपविरोधियुम् उपाय विरोधियुम् प्राप्य विरोधियुम्।

वह तो पहले पद में बताया हुआ स्वरूप विरोधी, प्राप्त होनेवाला उपाय-विरोधी और आगे के पद में बताये जानेवाले प्राप्य का विरोधी हैं।

८५. स्वरूप विरोधि कळिक्कैयावतु "याने नी येन्रुडै मैयुन्नीयै येन्रिरुक्कै।

स्वरूप विरोधि का नष्ट होना माने "मैं भी तुम्हारा हूँ। मेरा सब कुछ तुम्हारा ही है। ऐसी अध्यवसाय बुद्धि से रहना है।

उपाय विरोधि कळिक्कै यावतु "कळैवाय् तुन्वम् कळैया तोळिवाय कळैकण मत्तिलेन्" इन्रु इरुक्कै प्राप्यविरोधिकळिक्कै यावतु "मत्तै नङ्गमङ्गळ् मार्लृलृ (मात्तु) एन्रिरुक्कै।

उपाय विरोधिका नष्ट होना माने "तुम मेरी रक्षा करो या न करो तुम से दूसरा मेरा रक्षक नहीं है। ऐसी बुद्धि से रहना। प्राप्य विरोधि का नष्ट होना माने "बाकी सब कामनायें नष्ट हो जाय" ऐसी बुद्धि से रहना है।

८६. 'मः' एन्गै स्वरूपनाशम् 'नमः' एन्गैस्वरूपोज्जी वनम्।

'मः' कहने से स्वरूप का नाश होता है और 'नमः' कहने से स्वरूप का उज्जीवन होता है।

द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्यु स्त्र्यक्षरं ब्रह्मणः पदम्।
ममेति द्व्यक्षरं मृत्युः न ममेति च शाश्वतम्॥

मम मेरा या मैं अपना दास हूँ कहने से मौत का कारण है। तीन अक्षर 'न मम' मैं अपना नहीं हूँ कहने से मोक्ष का कारण होता है।

८७. इव्तुताम् स्वरूपत्तैयुम् उपायत्तैयुम् फलत्तैयुम् काट्टुम।

यह 'नमः' पद तो स्वरूप उपाय और फल की विरोधियों को दूरकरने से प्रकाशित करता है।

८८. तोलै विल्लिमङ्गळम् तोळुम् एन्गैयाले स्वरूपम् शोल्लित्तु वेङ्गडत्तुरैवार्कु नमः येन्गाले उपायम् शोल्लित्तु "अन्दितोळुं शोल्' येन्गयाले फलम् शोल्लित्तु।

"तोलैविल्लि नामक दिव्यदेश के लिये प्रणाम करता हूँ" कहने से स्वरूप बताया गया। वेंकटेश्वर को प्रणाम करता हूँ कहने से उपाय बताया गया। तिरुवेङ्गडमुडयान् का शेष भूत हूँ दूसरों का नहीं' कहने से उपाय स्पष्ट हो गया।

८९. उत्तु मुन्नडियार क्कडिमै येन्नायाले इतिले भागवत्-शेषत्वं अनुसंधेयम्।

अंत में नमस्कार बोलों कहने से फल बताया गया। "मैं तुम्हारे दासों का दास होना चाहता हूँ कहने से नमः पद में भागवत शेषत्व का भी स्मरण करना चाहिए। स्वामी तुम्हारे उपदिष्ट तिरुमंत्र का अर्थ जानकर मैं चाहता हूँ "तुम्हारे भक्तों का भक्त बनै" कहने से अहंकार

ममकार दूर हो जाते हैं और 'नम' से भगवत्शेषत्व की चरम दशा भागवत् शेषत्व व्यङ्ग्य होता है।

९०. इतु अकारत्तिले एन्रुं शोल्लुवरकल् उकारत्ति-लेयेन्रुम् शोल्लुवरगळ्।

अकार के चतुर्थी विभक्ति से भगवत् शेषत्व बताये जाने के बाद उस शेषत्व की चरम दशा भागवत् शेषत्व का अनुस्मरण कुछ लोग अकार में बताते हैं।

९१. ईश्वरन् तनक्केयायिरुक्कुम् अचित्तु पिरर्केयायिरुक्कुम् आत्मा तनक्कुम् पिरर्कुम् पोतुवायिरुक्कुमेन्रमुर्पट्टनि-नैव। अञ्चनन्रिक्के अचित्तैप्पाले तनक्केयान वेनैक्को-ळ्ळवेणु मेन्गिरतु नमस्साल्।

"स्वरूपं स्वातंत्र्यं भगवतः" के अनुसार स्वतंत्र ईश्वर अपने लिये होता है। अचित् चैतन्यरहित होने के कारण दूसरों के लिए होता है। 'नमः' शब्द से "अचित् की तरह मुझे अपने लिए स्वाकार करनेवाला अर्थ स्पष्ट मालुम होता है। इसका मतलब है कि खुद आनन्दपाने के लिए मोक्ष नहीं चाहता किन्तु भगवान् के आनन्द के लिए ही वैकुण्ठ चाहता हूँ।

९२. अतावतु भोगदशयिल् ईश्वर — नळिक्किन्रोतु नोक्कवेणु मेन्रळियातोळिकै।

भोग की दशा में यदि ईश्वर शेषत्व का नाश करना चाहते हैं तो उससे बचने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

९३. अळिकैक्कुहेतु कीळ शोल्लित्तु मेलुम् शोल्लुम्।

अळिकैक्कु रोकने का कारण पहले बताया गया और आगे भी बताया जायगा। "शेषत्व में आत्मावुक्कु स्वरूपम्" प्रणव में यह बात पहले बताई गई और नारायण पद में भी बतायी जायगी।

९४. इन्निनैवु पिरन्दपोते कृतकृत्यन् विल्लवपोतु एल्ला-
दुष्कृतङ्गळुम् कृतम् इन्निनैविले येल्ला सुकृतङ्गळु-
मुण्डु इतनि्रक्के यिरुक्कप्पण्डुं यज्ञादिकळुम् प्रायश्चि-
त्तादिकळुम् निष्प्रयोजनङ्गळ् इतुतन्नाले येल्लापापङ्ग-
ळुम्पोम् येल्ल फलङ्गळुमण्डाम्।

जब ऐसा अध्यवसाय होता है सफल कृतकृत्य होता है और इसके अभाव में सभी दुष्कृत पाप किये गये मानना चाहिये। "तनक्केयाक वेनैकोळ्ळवेणुम्" अपने लिए ही मुझे स्वीकार करें। इस प्रकार पारतंत्र्यज्ञान के पैदा होते ही सभी प्रकार के सुकृत यानी भगवत्कटाक्ष आदि सभी अच्छाइयाँ मिलती हैं। इसके अभाव में ऐसा माना जाता है कि तेन न कृतम् पापम् चोरेणात्मापहारिणा" जो आत्मापहारी चोर है उससे क्या पाप नहीं किये जाते? सभी पाप किये जाते हैं।

ईश्वर की प्रति के लिये किये जानेवाले यज्ञयागादि, स्वपाप विमोचन के लिये किये जानेवाले कृच्छ्र चांद्रायण आदि प्रायश्चित्त प्रयोजन रहित होते हैं। इससे मध्यम पद 'नमः' का अर्थ पूरा हुआ।

९५. नारायणनेन्रतु नारङ्गळुक्कु अयनमेन्रपडि।

नारायण माने नाराणां आश्रय कहलाता है। नाराणाम् + अयन यः सः इति तत्पुरुषसमासेन नाराः अयनम् यस्य सः इति बहुव्रीहि समासेन, दो प्रकार से अर्थ बताया जा सकता है।

९६. नारङ्गळावन नित्यवस्तुक्कळिनुडयतिरळ्।

नारङ्गळ माने नित्य वस्तुओं का समूह है। 'नारपदम्' नर से नार उससे नारा बना हुआ है। रिङ्-क्षये धातु के बल से 'र' अक्षर नष्ट होनेवाली वस्तु को बताता है न कार उसका निषेध। नर का कुल अर्थ नष्ट न होनेवाली नित्यवस्तुएँ। समूहार्थ में 'अण्' प्रत्यय से आदि वृद्धि हुई। नर से नार इति। नाराः इस बहुवचन प्रयोग से समूहों की बहुलता बताया जाता है। नित्य से नर शब्द का अर्थ वस्तु से नार शब्द का और तिरळ् के बहुवचन बताया गया है।

९७. अवैयावन-ज्ञानानन्दामलत्त्वादिकळुम्, ज्ञान शक्त्या-दिकळुम् तिरु मेनियुम्, कान्ति सौकुमार्यकळुम् दिव्यभूषणङ्गळयुम् दिव्यायुधङ्गळुम् पेरियपिराट्टियार नुडक्कमान नाच्चियारकळुम् नित्यसूरिकळुम् छत्र-चामरादिकळुम् तिरुवाशलकाक्कुम् मुतळिकळुम्, गणदिपरकळुम् मुक्करुमुम् परमाकाशमुम् प्रकृतियुम् बद्धात्मक्कळुम् महदादि विकारङ्गळुम् अण्डक्कुळुम् अण्डत्तुक्कुळ् पट्टदेवादि पदार्थङ्गळुम्।

वे ये हैं — ज्ञान आनन्द, अमलत्वादि ज्ञान शक्त्यादि, वात्सल्य सौशील्यादि दिव्यमंगळविग्रह, कांतिसौकुमार्य आदि, दिव्याभरण, दिव्या-युध, लक्ष्मी आदि पत्नियाँ, नित्यसूरि छत्र चामरादि द्वारपालक गणाधिप मुक्त, परमाकाश मूलप्रकृति बद्धात्मायें काल महदादि विकार अण्डान्तर्गत देवादि पदार्थ।

९८. अयनमेन्रतु-इतक्कु आश्रयमेन्रपडि।

अयन माने इनका आश्रय होकर रहना।

९९. अङ्गनन्रिक्के इवै तन्नैयाश्रय मागवुडैय नेन्रवुमाम्।

इसके अलावा इन सब का आश्रयवाला बहुव्रीहि समास के अनुसार भी अर्थ बताया जा सकता है पहला अर्थ कर्मधारय समास के अनुसार बताये जाने पर सब का आधार अर्थ होता है। दूसरे अर्थ में सबके अन्दर रहनेवाला बताना चाहिए।

१००. इवै इरण्डालुम् फलित्ततु परत्व सौलभ्यङ्गळ्।

सभी का आधार कहने से परत्व और सबसे बडा होकर खुद चेतन और अचेतन के अन्दर रहनेवाला कहने से सौलभ्य रूपी गुण प्रकाशित होता है।

१०१. अन्तर्यामित्वमुम्, उपायत्वमुम् उपेयत्वमुम् आक-वुमाय।

अन्तर्यामी होना, उपाय होना और उपेय भूत होना भी मालुम होता है। अन्तर्यामी ब्राह्मणादि में अखिल चेतन और अचेतनों के अन्तर्यामी होकर रहना बताया गया। 'अयन' शब्द 'इण् गतौ धातु से कारण व्युत्पत्ति के कारण उपाय का अर्थ और कर्मणि व्युत्पत्ति के अनुसार उपेय का अर्थ बताया जाता है।

१०२. एम्बिरानेन्दैएन्गायाले ईश्वरने एल्लावुरवुमुरैयुमेनु- शोल्लोम्।

नारायण शब्द का अर्थ बताते समय तिरुमंगैयाळ्वार ने बताया कि कर्मणि व्युत्पत्ति से मालुम होनेवाले प्राप्यत्व का वह या ग्रह भेद के अभाव से सब प्रकारों को बताने के कारण बन्धु लाभ भी मालुम होता है। ईश्वर ही सब तरह का बन्धु है।

१०३. नान् पिरक्कान वनुम् अवन् नमक्कायिरुक्कुम्।

हम दूसरों के होने पर भी वह सर्वेश्वर हमारा ही होता है।

१०४. इरामड मूट्टुवारेप्पोले उळ्ळे पतिकिइन्दु सत्तैये पिडित्तु नोक्कि कोण्डुपोरोम्।

रात्रि मठ में खिलाने वाले के समान अन्दर अन्तरात्मा के रूप में रहकर हमारी रक्षा करता जाता है।

यहाँ एक ऐतिह्य बताया गया। कोई पुत्र पिता को छोडकर घर से चला गया। रात में एक मठ में आकर जीवन बिताने लगा। पिता पुत्र को खोजता हुआ यह समाचार समझ गया। तब मठाधिपति के पास जाकर पैसा देते हुए हर रोज बेटे को भोजन देने का इंतजाम किया। उसी प्रकार परमात्मा हमारे हृदय के अन्दर रहकर हमारी सत्ता की रक्षा देख भाल करते हुए हमारा निर्वाह करता है।

इस नारायण पद से कैंकर्यप्रतिसंबन्धी नारायण का चाल ढाल बताया गया।

१०५. आयएन्गिर वित्ताल् "शेन्रार्कुडैयाम्" एन्गिरपडिये एल्लावडिमैकळुम् शेय्यवेणुमेन्रु अपेक्षिक्किरतु।

'आय' चतर्थीविभक्तिप्रत्यय से 'शेन्रार्कुडैयाम्' के अनुसार यह प्रार्थना की जाती है कि सभी तरह की सेवायें करें। निवास शय्यासन पादुकांशुकोपधान वर्षातपवारणादिभिः शरीरभेदैः स्वावशेषतां गतैः यथोचितं शेष इतीरितो जनैः।

१०६. नमस्साले तन्नोडुरविल्लै येन्रुवैत्तु, कैङ्कर्यत्तै प्रार्थिक्क-कूडुमो वेन्रिरल्।

'नमः पद से अपने को परतंत्र बताकर परमात्मा से कुछ मांगने का मौका भी नहीं है" बताया गया।

१०७. "पडियाम् किडन्दु उन्पवळवाय काण्गेने" एन्गिर-पडिये कैङ्कर्य प्रार्थन्नै वन्देरियन्रु स्वरूप प्रयुक्तम्।

फिर कैङ्कर्य प्रार्थना कैसे की जाती है? इस प्रश्न के जवाब में कुलशेखर के "पडियाय किडन्दु उन पवळवाय् कण्मने" — इस पाशुर का अर्थ है कि सोपान बनकर आपके सुन्दर मुखारविन्द के 'दर्शन करने चाहिए। इसके अनुसार कैङ्कर्य प्रार्थना ऊपर से लाई जानेवाली नहीं है। वह तो स्वरूप प्रयुक्त है।

१०८. आकैयाले 'वळुविलावडिमैशेय्यवेण्डुनाम् एन्गिर-प्रार्थनैयै क्कट्टुकिरतु।

"हम तुम्हारी सेवा ही कर लेंगे" आदि शठकोप यति के वचनानुसार प्रार्थना को ही चतुर्थी विभक्ति दिखाती है।

१०९. "कण्णारक्कंडु कळिवतोर क्कातलुत्तारर्कुः मुंडो कण्गल् तुञ्जतल्" एन्गिरपडिये कण्वतर्कुमुन्वु उरक्क-मिल्लै, कण्डाल्। 'सदा पश्यन्ति सूरयः" याकँ-याले उरक्कमिल्लै"।

उक्त शठकोपयति के वचनानुसार देखने से पहले निद्रा नहीं आई फिर देखने के बाद पलकें ही नहीं लगीं। बेपलक मारे देखता ही रहा।

११०. पळुते पलपकलम् पोयिन् येन्रु इळन्दवाळुक्कु
क्कप्पिडुकिरवनुक्कु उरङ्ग विरकिल्लै।

पळुते पलपकलम् पोयिन" यानी "कई वर्ष फिजूल चले गये" कहकर बीते हुए दिनों के लिये रोनेवाले को या शिकायत करनेवाले को सोने का अवकाश नहीं है।

१११. अन्रुनान् पिरन्दिलेन् पिरन्दिपिन् मरन्दिलेन् येन्रा
निन्नारकळिरे।

अज्ञान के समय अपने को पैदा हुआ नहीं समझा। ज्ञान प्राप्ति रूप जन्म लेने के बाद सर्वेश्वर को कभी नहीं भूला।

११२. इव्वडिमैंतान् "ओळिविलकालमेल्ला मुडनायमन्रि"
येनिगरपडिये सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्थाकळिलु
मनुवर्तिक्कुम्।

इस सेवा को तो लगातार सभी समयों में रहता हुआ स्थिरता से" के वचन के अनुसार सभी देशों में सभी कालों में सभी दशाओं में करता ही रहूँगा।

११३. एट्टिळैयाय् मूनुरुशरडायिरुप्पतोरु मङगळसूत्रम्बोले
तिरुमंत्रम्।

आठ धागों से युक्त तीन सूत्रोंवाला जो मंगळसूत्र होता है उसी प्रकार आठ अक्षरों से युक्त तीन पदवाला (ओं नमो नारायणाय) यह मंत्र विराजमान है। जिस प्रकार पत्नी के गले का मंगलसूत्र भर्ता को छोडकर किसी दूसरे से संबन्ध नहीं बताता है अनन्यार्हता बताता है

उसी प्रकार पत्नी रूपी यह आत्मा सर्वेश्वर के लिये ही है और किसी से संबन्ध नहीं जोड सकती।

११४. इत्ताल् ईश्वरनात्माक्कळक्कुप्पतियाय् निन्रु रक्षिक्कु मेनिग्गरतु।

इससे मालुम होता है कि ईश्वर आत्माओं के पति होते हुए रक्षा करते रहते हैं।

११५. आक तिरुमंत्रत्ताल् एम्बिरुमाननुक्के युरियेनानना‌न् येनुक्कुरियनन्रेक्के योळियवेण्डुम् सर्वशेषियान नारायण-नुक्के येल्लावडिमैकळुम् शेय्यपेरुवेनाकवेण्डुम् येन्रतायत्तु।

इसलिये इस तिरुमंत्र से यह स्पष्ट मालुम होता है कि सर्वेश्वर का ही मैं शेषभूत हूँ अपना नहीं और दूसरों का भी नहीं जो सर्वशेषी नारायण हैं उनकी ही सभी सेवायें करूंगा। इस प्रकार इस मंत्र का सारार्थ इसलिये बताया गया कि सब लोग मंत्र का जप करते हुए इसका अर्थ हमेशा मनन करते रहे।

तिरुमंत्र का अर्थ पूरा हआ।

श्री पिल्लैलोकाचार्याय नमः

श्रीमते रामानुजाय नमः

द्वयमंत्रार्थ की अवतारिका

पहले रहस्य तिरुमंत्र का अर्थ के बताने के बाद उसके बीच में रहनेवाले 'नमः' पद का और तीसरे पद 'नारायण' का अर्थ बताए हुए उपाय और उपेयों को साफ साफ बतानेवाले द्वयमंत्र का अर्थ बताया जाता है।

इसके पहले श्री पिल्लै लोकाचार्य के तीन ग्रन्थ 'श्रियःपतिपडि परंदनपडि और यादृच्छिकपडि' रचे गये हैं। उनमें तिरुमंत्र का अर्थ बताकर चरमश्लोक का अर्थ बताया गया। अब मुमुक्षुपडि में तिरुमंत्र के बाद द्वय का अर्थ क्यों बताया जाता है? यह शङ्का उत्पन्न होती है। जवाब में यह बताया जाता है कि दोनों प्रकार बताना संभव है। श्रेयस्कर है।

पहले चरमश्लोक का अर्थ बताकार बाद द्वय का अर्थ बताने में एक भलाई यह है कि विधि प्रतिपादक चरमश्लोक पहले बताकर अनुष्ठान रूपी द्वय का अर्थ बताना आवश्यक है। तिरुमंत्र प्राप्य को बताता है। चरम श्लोक प्रापक को बताता है।

फिर द्वय के अर्थ को बताकर बाद चरमश्लोकार्थ बताने में यह भलाई है कि तिरुमंत्र के मध्यम पद को और तृतीय पद को द्वय के दोनों वाक्य विस्तार रूप से बताते हैं। इस द्वय के दोनों वाक्यों का चरमश्लोक के पूर्व और उत्तर भाग दोनों विवरण देते हैं।

इसलिये दोनों प्रकार से बताने में कोई दोष नहीं है। उक्त तीनों ग्रन्थों में एक प्रकार बताया गया तो अब दूसरा प्रकार इस मुमुक्षुपडि में बताया जाता है।

द्वयप्रकरणम्

१. पुरम्बुंडान पत्तुगळै अडैय वासनयोडे विडुकैयुम् एम्बेरुमानैये तंञ्जमेन्रु पत्तिकैयुम् पेरुतप्पादेन्रु तुणिरिन्दिरुकैयुम् पेत्तिक्कु त्वरिकैयुम् इरुक्किमानाळ् उकन्दरुळिन निलङ्गळिले प्रवणनाय् गुणानुभवकैङ्क-र्यत्तिले पोतु पोक्काकैयुम् इप्पडि यिरुक्कुम् श्री-वैष्णवकुळेत्त मरिन्दु उकन्दिरुक्कैयुम्। तिरुमंत्रत्तिलुम् द्वयेत्तिलुम् नियतनाकैयुम् आचार्यप्रमम् कनत्तिरुक्कैयुम् आचार्यन् पक्कलिलुम् एम्बेरुमान् पक्किलिलुम् कृतज्ञनाय पोतुकैयुम् ज्ञानमुम् विरक्तिमुम् शान्तियु-मुडैयनाय् इरुक्कुम् परमसात्विकनोडे सहवासमुम् पण्णुकैयुम् वैष्णवाधिकारिक्कवश्यापेक्षितम्।

श्री वैष्णवों के उत्तम लक्षण यहाँ बताये जाते हैं। वैष्णव बाह्य विषयों का संबन्ध पूरी तौर से छोड दे वासना के साथ (अप्रयत्नपूर्वक प्रवृत्ति प्रयत्नपूर्वक प्रवृत्ति रुचि) छोड दे। अपने रक्षक परमेश्वर को ही रक्षक मानकर आश्रय पावे। यह निश्चय करके कि फल जरूर मिलेगा। रहे वैकुंठ में जाकर नारायण के पाने में त्वरा रहे। जब तक जीवित रहे तब तक दिव्य देशों के दर्शन व मनन में लगे रहे। श्री सर्वेश्वरन के गुणानुभव करते हुए उनकी सेवाओं में अपना समय बिताते रहे। ऐसे करनेवाले श्री वैष्णवों का बडप्पन समझकर उनके बारे में खुश होकर रहें। आदर करें।

तिरुमंत्र और द्वय का नियम से अनुसंधान करते हुए आचार्य के विषय में बडा प्रेम करते रहें। ज्ञान विरक्ति और शांति से रहते हुए जो **बडे** सत्वगुणवाले पुरुष हैं उनके साथ सत्संबन्ध बढाते रहे।

पहले दो वाक्यों से चरमश्लोक के पूर्वार्ध का अर्थ बताया गया। "पुरम्बुंडान पत्तुकळैअडय" से सर्वधर्मान अर्थ बताया गया। "वासनैयोडे विडुकैयुम्" से "परित्यज्य" का अर्थ और "एम्बेरुमानै" के शब्द से मां का अर्थ 'एवं' से एक पद का अर्थ तञ्जम् से एक पद का अर्थ स्पष्ट किया गया। इसके बाद उपाय उपेय के अधिकारी के महाविश्वास की आवश्यकता और कैंकर्यपाने की जल्दी भी बताया गया। सबसे बडा मुख्य विषय है जिन्होंने प्रेम व दया से मंत्र और मंत्रार्थ का उपदेश दिया उनकी भक्ति करना। "यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ" सर्वेश्वर के प्रति जितनी भक्ति होती है आचार्य के बारे में भी उतनी भक्ति रखनी चाहिए।

इस के लिये भागवत भक्ति की परम आवश्यकता है।

२. इव्वधिकारिक्कु रहस्यत्रय मनुसंधेयम्।

ऊपर बताये हुए नियमों के अनुसार रहनेवाले अधिकारी को ज्ञान व अनुष्ठान के वर्धक तीनों रहस्यों का अनुसंधान करना चाहिये।

३. एल्ला प्रमाणङ्गळिलुम् देहत्ताले पेरेनि्गरतु, तिरु-मंत्रत्तिल् आत्मावारे पेरेनि्गरतु, चरमश्लोकत्तिल् ईश्वरनाले पेरेनि्गरतु द्वयत्तिल् पेरियपिराट्टियाले पेरेरिनि्गरतु।

सभी प्रमाणों में चेतन के साधन और आचरण के लायक शरीर से ही चेतन को फल मिलता है।

आत्मा के कारण ही तिरुमंत्र का फल मिलता है।

चरमश्लोक का फल सर्वेश्वर के कारण ही मिलता है।

पेरियपिराट्टि (लक्ष्मी से) द्वयमंत्र से भगवत्प्राप्ति रूप फल मिलता है।

४. पेरियपिराट्टियाराले पेराकेयावतु।

पेरियपिराट्टि (लक्ष्मी से) फल मिलता है। इसका अर्थ है चेतन के अपराधों को देखे बिना रक्षा करने का ढंग पुरुषकार के बिना संभव नहीं हो सकता। वह पुरुषकार लक्ष्मी का काम है।

५. द्वयत्तुक्कधिकारि आकिञ्चन्यमुम् अनन्यगतित्वमुडैयवन्।

जो द्वयमंत्र का अधिकारी होता है उसे चाहिये कि आकिञ्चनत्व और अनन्य गतित्व। "त्वमेवोपायभूतो मे भव" "अकिञ्चनोऽनन्यगतिशरण्यः" तुमही मेरे उपाय हो अकिञ्चन का धर्म आकिञ्चन्य है।

६. इवै यिरण्डुम् प्रपन्नपरित्राणत्तिले शोल्लोम्।

यही चाहिये। उपायान्तरराहित्य रूपी अकिञ्चनत्व और रक्षकान्तर राहित्यरूपी अनन्यगतित्व दोनों "प्रपन्नपरित्राण" नामक ग्रन्थ में बताये गये।

७. ईतल् मूर्कूत्ताल् पेरियपिराट्टियारै मुन्निट्टुयीश्वरन् तिरुवडिगळै उपायमाक पत्तुकिरतु पिर्कूत्ताल् अर्चे-र्तियिले अडिमै इरक्किरतु।

इस द्वय के पहले खण्ड में लक्ष्मी को सामने रखकर 'नारायणचरणौ' ईश्वर के चरणों को 'शरणमहं प्रपद्ये' उपाय के रूप में पकडता हूँ। उत्तर भाग में श्रीमते लक्ष्मीयुक्त 'नारायणाय' की सेवा चतुर्थी से कैंकर्य की प्रार्थना की जाती है।

८. श्रीएन्रु पेरियपिराट्टियार्कु तिरुनामम्।

श्री पद का अर्थ है लक्ष्मी। "लक्ष्मी पद्मालया पद्मा कमल श्रीर्हरिप्रिया" श्रीः लक्ष्मी का पहला नाम है।

९. श्रीमते श्रयते।

"श्रिञ्, सेवायां" धातु से श्रीयत इति श्रीः दूसरों से आश्रित होनेवाली। यह कर्मणि उत्पत्ति से है।

'श्रयते' इति श्रीः। यह कर्तरि व्युत्पत्ति के अनुसार है। ईशवर का आश्रय पाकर रहनेवाली है।

१०. इतुक्कर्थम् — येल्लार्कुमिवळै प्रतिस्वरूपलाभमाय्, इवळ् तनक्कु अवनैपति स्वरूप लाभमाय इरुक्कु-मेन्रु।

इसका अर्थ है। सबको इसके द्वारा स्वरूप लाभ होता है। लक्ष्मी को ईश्वर के जरिये स्वरूप लाभ होता है।

११. इप्पोतिवळै च्चोल्लुकिरतु पुरुषकार माक।

यहाँ लक्ष्मी का नाम लेना पुरुष कार को सूचित करने के लिये। जिस प्रकार ईश्वर के उपायत्व और उपेयत्व रूपी दो आकार हैं उसी तरह लक्ष्मी के पुरुषकारत्व और प्राप्यत्व रूपी दो आकार विद्यमान हैं।

१२. नीरिले नेरुप्पुक्किळरुमापपोले कृळिरन्त तिरुवुळ्ळ-तिरे अपराधत्ताल् शीत्तुम् पिरन्दाल् पोरुप्पतिवळु-क्काक।

यहाँ पुरुषकार की विवक्षा ह। ठंडे पानी में उत्पन्न होनेवाली बडबाग्नि की तरह दयालु भगवान् के हृदय में चेतनों के अपराध देखकर क्रोध उत्पन्न होता है तो क्षमा कराना लक्ष्मी का काम है।

१३. इवळ् तायाय् इवरकळ् क्लेशम् पोरुक्कमाट्टादे अवनुक्कु पत्नियाय् इनियविषयमाय् इरुक्कैयाले कण्णळिवत्तपुरुषकारम।

लक्ष्मी माता होती हुई चेतनों के दुःख इससे न देखे जाते हैं। ईश्वर की पत्नी होती हुई अपना सौंदर्य दिखाकर वशीभूत करके उनके दिल में दया पैदा करती है।

१४. तिरुवडियै प्पोरुप्पिक्कमवळ् तनशोलवळि वरुमवने पौरुप्पिक्क च्चोल्लवेण्डाविरे।

हनुमान को शांत करनेवाली लक्ष्मी को अपनी बातें सुनकर दयामर्ग में आनेवाले ईश्वर से सापराध चेतनों का दया कराना असंभव नहीं है।

जब सीता अशोक वन में रहती थी राक्षस स्त्रियाँ बहुत डराती धमकाती थीं। तब उन्हें हनुमान ने मार डालना चाहा। सीता ने अपने उपदेश से उन्हें शांत किया उसी प्रकार अपने सौंदर्य के प्रेम में पडे ईश्वर को क्यों कर शांत नहीं कर सकती ?

१५. मतुपाले इरुवत्तिर शेर्तियुम् नित्यमेनि्गरतु।

'नित्य योगे मतुप्' के अनुसार इन दोनों लक्ष्मीनारायणों की जोडी नित्य यानी सदा रहनेवाली है।

१६. इवळोडे कूडिये वस्तुविनुडय।

इस लक्ष्मी से साथ मिलकर रहने से ही इसका अस्तित्व होता है।

१७. ईश्वर स्वातंत्र्यत्तैयुम् चेतननुडय अपराधत्तैयुम्
कंडकलमाट्टाल् (कंडु + अकलमाट्टाल्)

ईश्वर की स्वतंत्रता को और चेतन के अपराधों को देखकर नारायण को छोडकर नहीं रह सकती।

भावार्थ है कि ईश्वर सर्व स्वतंत्र हो "यद् ब्रह्मकल्पनियतानुभवेऽप्य-नाश्यम्' — चेतन क इतने पाप होते हैं कि ब्रह्म काल के अनंतर तक अनुभव करने पर भी वे नष्ट नहीं होते।

जब तक काल रहेगा तब तक दोषों के फलों का अनुभव करने पर भी नष्ट न होनेवाले पापों को गिनता हुआ ईश्वर चेतनों के वचन में आना कानी करते हैं तो लक्ष्मी उनको देखती हुई ईश्वर को छोड नहीं सकती।

१८. चेतनुक्कु इवै इरंडैयुम् निनैत्तञ्जवेण्डा।

इन दोनों को (ईश्वर स्वतंत्रता और अनगिनित पाप) जानकर चेतन को डरने की जरूरत नहीं है।

१९. इत्ताल आश्रयिकैक्कु रुचिये वेण्डुवतु कालंपारक्क वेण्डावेनि्गरतु।

इससे मालुम होता है कि आश्रय पानेवाले चेतन की रुचि ही चाहिये समय की गिनती करने की आवश्यकता नहीं है।

२०. इवळ् सन्निधियालेकाकातलैपेत्ततु। अतिलामैयाले रावणन् मुडिंदान्।

सीता के समीप रहने से ही काकासुर की प्रार्थना मंजूर हो गयी और वह जी गया।

सीता के अभाव में रावण श्रीराम के बाणों से मारा गया।

२१. पुरुषकार बलत्ताले स्वातंत्र्यम् तलै शायन्दाल् तलै येडुक्कम् गुणङ्ळै च्चोल्लुगिरतु नारायणपदम्।

पुरुषकार के बल से जब ईश्वर की स्वतंत्रता घट जाती है तब बाहर प्रकाशित होनेवाले गुणों को नारायण पद बताता है।

२२. अवैयावन वात्सल्यमुम् स्वामित्वमुम् सौशील्यमुम् सौलभ्यमुम् ज्ञानमुम् शक्तियुम्।

ईश्वर के गुण ये हैं — (१) वात्सल्य (२) स्वामित्व (३) सौशील्य (४) सौलभ्य (५) ज्ञान (६) शक्ति।

वात्सल्य — गाय अपने सद्यः प्रसूत बछडे के विषय में उसके दोषों को गुणों के रूप में लेती है उसी प्रकार भक्त के दोषों को भी गुण के रूप में लेना।

स्वामित्व — चेतन के विमुख होने की दशा में भी उसको छोडे बिना उसकी रक्षा करते रहने का हेतु भूत संबन्ध विशेष।

सौशील्य — (उभय विभूति के सबन्ध से लक्ष्मी के संबन्ध से भी निरंकुश) सर्वेश्वर का बडप्पन अपनी अल्पता का ख्याल करके पीछे न हटने के लिये ईश्वर का भेद रहित होकर सबसे मिलकर रहना (और फल मिलने के निश्चय के साथ रखना।)

सौलभ्य — जो ईश्वर आंखों से देखा नहीं जाता वह भक्त को दर्शन देकर सुलभ होकर रहना।

ज्ञान — चेतन के निवारण किये जानेवाले अनिष्टों का और दिये जानेवाले अभीष्टों का प्रत्यक्ष ज्ञान रखना।

शक्ति — जो नीच नित्य संसारी हैं उन्हें आराधनीय नित्य सूरियों के साथ मिलाकर एक ही गोष्ठी के लायक बनानेवाली अघटित घटना शक्ति।

२३. कुत्तङ्गण्डु वेरुबामैक्क वात्सल्यम् कार्यं शेय्युमेन्रु तुणिकैक्कु स्वामित्वम् स्वामित्वङ्गण्डकलामैक्कु सौशी-ल्यम् कण्डुपत्तुकैक्कु सौलभ्यम् विरोधियै पोक्कि तन्नै क्कोडुकैक्कु ज्ञानशक्तिकळ्।

दोषों को देखकर पीछे न हटने के लिये वात्सल्य मेरा, कार्य करेंगे। ऐसा विश्वास रखाने केलिये स्वामित्व, स्वामित्व को देखकर पीछे न हटने के लिये सौशील्य देखकर आश्रय पाने के लिये सौलभ्य विरोधियों को दूर करके अपने को प्राप्त कराने को ज्ञान व शक्ति।

२४. इङ्गुव्वोत्र सौलभ्यत्तु क्केल्लै निलमर्चावतारम्।

यहाँ सौलभ्य का हद है अर्चावतार।

२५. इतुतान् परव्यूह विभवङ्गळ् पोलन्रिक्के कण्णाले काणलाम् बडि इरुक्कुम्।

यह तो परव्यूह विभव (परमात्माके भिन्न भिन्न स्थितियों) के बराबर न हो कर आंखों से देखने लायक होता है।

२६. इवै येल्ला नमक्कु नम्बेरुमाळ् पक्कलिले काणलाम्।

ये सब हम अपने भगवान् के (प्रतिमा) बारे में देख सकते हैं।

२७. तिरुक्कैयिले पिडित्तदिव्यायुधङ्ङ्ळुम् वैत्तंजलेनूरक्कैयुम् कवित्त मुडियुम् मुकमुम्मुरुवलुम् आसन पद्मत्तिले अळुत्तिन तिरुवडिकळुमाय् निर्किरनिलैयै नमक्कु तञ्जम्।

हाथ में धारण किये हुए दिव्य हथियार भक्तों को धैर्य देनेवाला अभयहस्त, पहना हुआ किरीट, सुन्दर मुख मंडलमुस्कुराहट आसन पद्म में रखे हुए श्रीचरण इनसे विराजमान परिस्थिति ही हमारा रक्षक है।

२८. रक्षकत्व भोग्यत्वगळिरंडुम् तिरुमेनियिले तोत्तुम्।

भगवान के जो रक्षकत्व व भोग्यत्व हैं वे दोनों स्वामी की प्रतिमा में व्यक्त होते हैं।

२९. चरणौ तिरुवडिगळै।

भगवान के चरणों को।

३०. इत्तालशेर्तियळकैयुम् उपायपूर्तियैयुम् शोल्लुकिरतु।

इससे दोनों चरणों का सौंदर्य उपाय पूर्ति भी बताये गये। श्री चरण अनुपमसौंदर्य से युक्त होकर भक्तों का एकमात्र उपाय होकर विराजमान हैं।

३१. पिराट्टियुम् अवनुम् विडिलिम् तिरुवडिगळ् विडातु तिण कळलाय् इरुक्कुम्।

लक्ष्मी और भले ही भक्त को छोडे ये चरण नहीं छोडेंगे। दृढ होकर रहेंगे। तिण् + दृढ, कजळ् + चरण

३२. शेषिपक्कल् शेषभूत तिजियुम् तुरै। प्रजैमुलथिले वाय् वैक्कुमाप्पोले।

शेषी परमात्मा केद आश्रय में शेषभूत आत्मा का उज्जीवन पाने का स्थान है। (इसके लिये दृष्टांत बताया जाता है।)

दूध पीता बच्चा माता के बहुत अंगों के रहने पर भी वह माता के स्तन में ही अपना मुंह डालता है।

३३. इत्ताल् पिराट्टि क्किरुमाय् गुणप्रकाशकमाय् शिशु-पालनैयु मरुप्पड त्तिरुत्ति च्चेर्तकोळ्ळुम् तिरुमेनियै निनैक्किरतु।

श्रीमन्नारायण के सारे विग्रह का द्योतक हैं श्रीचरण।

इससे मालुम होता है, लक्ष्मी के स्थान भूत सभी गुणों के प्रकाशक और अपने से द्वेष करनेवाले शिशुपाल को भी सुधारकर अपने आश्रम में लानेवाले दिव्यमंगळ विग्रह का ज्ञान होता हैं।

३४. 'शरणम्' इष्ट प्राप्तिक्कुमनिष्टनिवारणत्तुक्कुम् तप्पात उपायमाक।

"उपाये गृहरक्षित्रोश्शब्दश्शरणमित्ययम्। वर्तते सांप्रतञ्चैव उपायार्थैक वाचकः॥" शरण शब्द के तीन अर्थ है। उपाय, घर और रक्षा करनेवाला। यहाँ उपाय का अर्थ ही ग्रहण करना चाहिये।

इष्ट माने अर्चिरादिमार्गगमन, परमपदप्राप्ति, स्वामिदर्शन और कैंकर्य आदि मालुम होते हैं। इनके दिलाने, अनिष्ट माने अविद्या के कारण राग व द्वेष पुण्य पाप रूपी कर्म देवादि का शरीर और दुःख परंपरा का निवारण करनेवाला अमोघ उपाय है।

३५. इत्ताल् प्राप्यन्दाने प्रापक मेन्गिरतु।

इससे मालुम होता है कि प्राप्य ही प्रापक है।

३६. कीळ च्चोन्न मून्रुम् प्राप्यमिरे।

इसके पहले बताये हुए लक्ष्मी से युक्त होना कल्याण गुणों का संबन्ध और दिव्यमंगळ युक्त होना तीनों प्राप्य होते हैं।

मुक्तों के अनुभूत तीन प्राप्य हैं। "श्रियासार्धमास्ते" भगवान का लक्ष्मी से युक्त रहना है, सर्वान् कामानश्नुते 'सभी कल्याण गुणों का अनुभव करता है और "सदा पश्यंति सूरयः" हमेशा आंखों से देखते सेवा करते हैं। ये तीनों मुक्तों के प्राप्य हैं।

३७. इवन् शैयलरुतियाले उपाय माक्कु किरनित्तनै।

दूसरे उपाय के अभाव में और दूसरे रक्षक के अभाव में रहनेवाला चेतन करने के लिये किसी का न रहने के कारण इनको ही प्रापक के रूप में ग्रहण करता है।

३८. चरणौ शरणम्।

इस से मालुम होता है कि प्राप्य वस्तु ही के प्रापक होने से यह उपाय दूसरे उपायों से भिन्न है।

३९. प्रपद्ये-पत्तुकिरेन्-।

आश्रय पाता हूँ। पकडता हूँ।

४०. वाचिकमाकवुम् कायिकमागवुम् पत्तिनालुम् पेत्तुक्कुइ-ळइल्लै। "ज्ञानात् मोक्षम्" आकैयाले मानस माकक्कडवतु।

यह आश्रय पाना केवल वाक् से हो या शरीर से हो फल पाने में कोई कमी नहीं है। "ज्ञनात् मोक्षम्' कहने से मानसिक आश्रयभी हो सकता है। यह ज्ञान अनन्यार्हशेषत्व इतरोपाय व्यावृत्त भगवद्रक्षकत्वानुमति-रूप एक ही बार अनुष्ठेय जरूर फल देने के विश्वास से युक्त अविलम्ब फल देनेवाला सर्वाधिकारभूत नियमरहित और अंतिम स्मृति से शून्य सुलभ व प्रार्थना गर्भित है।

४१. उपाय मवनाकैयालुम् इवैनेरे उपायमल्लामैयालुम् इम्मूनूरूम् वेण्डुमेनिगर निर्बंधमिल्लै।

उपाय सर्वेश्वर ही है। इन तीनों कारणों से किये जाने चाहिये। उपाय एक कारण से भी काम सफल हो सकता है अध्यवसायात्मक उपाय स्वीकार मुख्य है।

४२. वर्तमान निर्देशं सत्त्वम् तलै ह्येडुत्तं जनपोतु अनुसंधिक्कैक्काग।

'प्रपद्ये' वर्तमान काल प्रयोग का सार्थक्य बताया जाता है। रजस्तमो गुणों से दूसरे साधनों को यदि पकडे तब सब गुण ऊपर उठकर भयकंपित होता है तो प्रपत्ति रूपेण पुनः शरणागति का स्मरण करना होता है।

यहाँ यह शक पैदा होता है कि प्रपत्ति एक ही बार की जाती है फिर वर्तमान काल में क्रिया पद का प्रयोग क्यों किया गया? इसका जवाब है कि चेतन एक बार प्रपत्ति करके रह जाता है तो फिर प्रकृति बल से रज और तमोगुण चेतन को आच्छादित करके भुलाते हैं तो चेतन सत्व गुण के बल से पूर्वप्रपत्ति का अनुसंधान करने केलिये वर्तमान निर्देश प्रयोजनभूत होता है।

४३. उपायान्तर्गळिल् नेञ्जुशेल्लामैक्कुं कालक्षेपत्तुक्कुं इनि-मैयाले विडवोण्णामैयालुं नडक्कुम्।

कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि दूसरे उपायों में मन के न जाने के लिये समय बिताने में रुचिकर होने से इसे छोड नहीं सकते अतः यह स्मरण लगातार चलता है।

४४. पेत्तुक्कुप्पल कालम् वेण्डुमेन्रु निनैक्किलुपायम् नळुवुम्।

इसके सिवा फलसिद्धि के लिये कई बार स्मरण आवश्यक मानें तो उपाय नष्ट होगा।

४५. उत्तरवाक्यत्ताले प्राप्यम् शोल्लुकिरतु।

पूर्व भाग का अर्थ पूरा हुआ।

अब उत्तर वाक्य का अर्थ बताया जाता है। इससे यानी श्रीमते 'नारायणाय नमः'' से फल बताया जाता है। वह श्रियः पति के चरणों में किये जानेवाला सेवाभाव है।

४६. प्राप्यन्तरत्तु क्कुन्रेन्गै।

दूसरे फलों को पाने के लिये नहीं है।

४७. उपायान्तर्गळै विट्टु चरमोपायत्तै पत्तिनार्प्पोले उपेयान्तरमान वैश्वर्य कैवङ्गळैविट्टु येल्लै निकमान प्राप्यत्तै यर्थि यियिक्किरतु।

कर्म ज्ञान आदि उपायों को छोडकर आखिरी उपाय प्रपत्ति के लेने के जैसे दूसरे उपेय ऐश्वर्य कैवल्य आदि को छोडकर चरमपुरुषार्थ कैंकर्य की प्रार्थना की जाती है।

४८. इवन् अर्थिक्क वेणुमो सर्वज्ञन् इवन् निनै वरियामोवेन्निल्।

क्या इस आत्मा को प्रार्थना करनी चाहिये सर्वज्ञ ईश्वर इसकी इच्छा को नहीं जानता।

४९. इवन् पाशुरम् केट्टुवारे तिरुवुळ्ळम् उकक्कुम।

इस चेतन की (प्रार्थना) बात सुनते ही हृदय विकसित होता है।

५०. श्रीमते

लक्ष्मी से युक्त

५१. पेरियपिराट्टि यारोडे कूडि यिरुन्दुळ्ळवनुक्कु।

लक्ष्मी से मिलकर रहनेवाले श्रीमन्नारायण को यहाँ के श्री शब्द के भी पहले के दोनों अर्थों से संबन्ध बताना चाहिये।

(१) लोगों से आश्रित होनेवाली।

(२) खुद नारायण का आश्रय पाकर रहनेवाली। नित्यसंबन्ध मालुम होता है।

५२. अवनुपायमामिडत्तिल् तान् पुरुषकारमाय् इरुक्कुम् प्राप्यनामिडत्तिल तान् प्राप्यै युमाय्कैंकर्यवर्धक-मायिरुक्कुम्।

जब भगवान् उपाय भूत होते हैं तब लक्ष्मी खुद पुरुषकार करनेवाली होती है। जब वे प्राप्य होते हैं वह भी प्राप्य होकर कैंकर्य को बढाती हैं।

पहले वाक्य में श्रीमत् शब्द का यह अर्थ है कि चेतन के अपराध और भगवान की स्वतंत्रता देखकर चेतनों पर भगवान के क्रुद्ध न होने के लिये लक्ष्मी पुरुषकार भूत होकर भगवान से क्षमा कराती है।

यहाँ द्वितीय वाक्य में श्रीमत् शब्द का अर्थ है कैंकर्य प्रति संबन्धि भगवान को पाते समय चेतन के कैंकर्य भगवान के हृदय में अच्छा लगने के लिये क्षण भी उससे संबन्ध न छोडकर रहती है। प्राप्य होकर रहती है।

५३. इत्तिले तिरुमंत्रत्तिल् शोन्न प्राप्यत्तै विशदमाक ननुसंधिक्किरतु।

तिरुमंत्र में तीसरा पद जो नारायण पद है इसका विशद रूप से यहाँ अर्थ बताया जाता है। तिरुमंत्र में 'नारायण' पद का कैंकर्य बताया गया। अब बताया जाता है कि वह नारायण श्रीमान् लक्ष्मीयुक्त है। वही प्राप्य है। मिथुन ही प्राप्य है।

५४. इळैय पेरुमाळै प्पोले यिरुवरुमान शेर्तियिले अडिमैं शेयुकै मुरै।

लक्ष्मण की तरह मिली हुई दंपति की सेवा करना ठीक है। लक्ष्मण ने राम से कहा —

भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्चते ॥

५५. अडिमैतान् सिद्धिप्पतुम् रसिप्पदु मच्चेर्त्तियिले।

इस दंपति के कारण ही चेतन का कैंकर्य सिद्धि पाता है और आनन्दमय बनता है।

५६. नारायणाय

अतः इस दंपति में ही भक्ति करनी चाहिये।

५७. सर्वशेषियायुळ्ळवनुक्कु।

अब दूसरे पद का अर्थ बताया जाता है जो सर्वशेषी है उनको जो लीला विभूति और नित्य विभूति के नाम हैं अत एव सर्वशेषी।

५८. इत्तिले तिरुमेनियैयुम् गुणङ्ग्ळैयुम् शोल्लुम्।

इस नारायण शब्द से दिव्यमंगळ विग्रह और उसके अनन्त कल्याणगुण जाने जाते हैं।

५९. शेषित्वत्तिले नोक्कु।

'नारायण' शब्द का शेषी होने में मतलब है।

६०. प्राप्तविषयत्तिल् कैंकर्यमिरे रसिप्पदु।

स्वरूप से प्राप्त विषय में कैंकर्य ही तो आनन्द पहुचाता है।

६१. इन्द चतुर्थी कैंकर्यत्तै प्रकाशिप्पिरतु।

यहाँ चतुर्थी विभक्ति कैंकर्य को प्रकाशित करती है।

६२. कैंकर्यन्दान् नित्यम्।

कायिक वाचिक कैंकर्य तो नित्य सदा रहनेवाला होता है। शेषत्व ही आत्मा का स्वरूप है। कुछ भी न करना शेषत्व का विरोध है।

'साम गायन्नास्ते'' साम गाते नित्यसूरि रहते हैं। आदि प्रमाण प्रसिद्ध हैं।

६३. नित्यमाक प्रार्थित्ते पेरवेणुम्।

हर रोज प्रार्थना करके ही पाना चाहिये। शेषत्व ही चेतन का स्वरूप है। 'अकिंचत्करस्य न शेषत्वम्'' के अनुसार हर रोज प्रार्थना करनी चाहिये। तभी कैंकर्य रूपी प्राप्य मिलेगा।

६४. शेषिक्कु अतिशयत्तै विळैविक्कै शेषभूतनुक्कु स्वरूप-लाभमुम् प्राप्यमुम्।

शेषी आत्मा को अतिशय आनन्द पहुंचाना चेतन का स्वरूप लाभ और प्राप्य होता है।

६५. नमः।

'नमः' शब्द से कैंकर्य में दोष का निवारण होता है। तिरुमंत्र में रहनेवाले नमः शब्द की तरह पहले वाक्य के नमः शब्द से स्वरूप उपाय और पुरुषार्थ तीनों के विरोधियों का निवारण होता है।

६६. कैङ्कर्यत्तिल् कळैयरुक्किरतु।

यहाँ दूसरे वाक्य के नमः शब्द से कैंकर्य के विरोधी का निवारण होता है।

६७. कळैयावतु तनक्केन्नप्पण्णुमव।

दोष यानी अपने लिये समझ कर सेवा करना।

''भोक्ताहं मम भोगोऽयम्'' ऐसा समझकर कैंकर्य किया जाता है तो दोषयुक्त है। भगवान के मुख विकास केलिये ही चेतन का कैंकर्य हो।

६८. इतिले अविद्यादिकळुम् कळियुण्णुम्।

अनात्मन्यात्म बुद्धिर्या अस्वे स्वमिति या मतिः। अविद्या तरु संभूति बीज मेतत् द्विधास्थितम्॥

जो आत्मा नहीं है उस शरीर में आत्मा का ज्ञान जो अपनी चीज नहीं उसमें अपना ज्ञान अज्ञान से पैदा हुए हैं। ऐसी अविद्या से उत्पन्न भाव इस नमः शब्द से नष्ट होते हैं।

६९. उनक्के नामाट् चेय्वोम्।

तुम्हारे लिये ही कैंकर्य करूंगा। कैंकर्य के करने में "तुम्हारा ही दास हूँ" के भाव से करना चाहिये।

७०. सौन्दर्य मन्तरायम् कीळ् च्चोन्न कैंकर्यमुमप्पडिये।

सौन्दर्य विघ्न पहुंचानेवाला है। इसके पहले बताया हुआ सौन्दर्य वैसा ही है। भगवान नारायण का विग्रह सौन्दर्य चित्तापहारी होता है अपने को (आत्मा को) भुलाता है। अतः कैंकर्य करने में विघ्न आता है। यद्यपि भगवान को खुश करने के आनन्द में आत्मलीन है तो भी आत्मा को वह सौन्दर्य विघ्न पहुंचानेवाला होता है।

७१. कैंकर्यप्रार्थनैप्पोले इप्पदत्तिल् प्रार्थनैयुमेन्रुमुण्डु।

कैंकर्य प्रार्थना के समान विरोधि निवृत्ति की प्रार्थना भी इस शब्द में हमेशा रहता है।

७२. मरुन्दे मङ्गळ् पोक मकिळिच्चिक्क एन्रानिन्रवतिरे।

"तुम्हारे अनुभव से मिलनेवाले आनन्द के विषय में भोक्ता का ज्ञान पहुंचाकर स्वरूप को न बिगाडनेवाले स्वामी" शठकोपयति ने बताया।

द्वयप्रकरण समाप्त हुआ

पिल्लै लोकाचार्यतिरुवडिगळे शरणम्

श्रीमते रामानुजाय नमः

पिल्लै लोकाचार्य के चरमश्लोक भाग का हिन्दी अनुवाद

अवतारिका

मध्यम रहस्यनात द्वयत्तिलुडय अर्थत्ते यरुळिच्चेय-
तवनंतरम् अतिल् पूर्व वाक्यत्तिल् च्चोल्लुकिर उपायव-
रणम् सर्वेश्वरन्त्वनि विधिक्कयाले तदभिमत-
मेन्रु मत्तैयुम् वरणाङ्गमान साधनान्तर परित्यागत्तैयुम्
वरणत्तिल् साधनत्व बुद्धिराहित्यत्तैयुम् शाब्दमाक
पूर्वार्धत्ताले प्रतिपादिकैयालुम्।

तिरुमंत्र द्वय चरमश्लोक तीन रहस्य हैं। इनमें बीचके दूसरे रहस्य के अर्थ के कथन के बाद इसमें पूर्ववाक्य में बताये हुए उपाय का स्वीकार चरमश्लोक में सर्वेश्वर के खुद बताने के कारण उनके अभिमत विषय को उपाय स्वीकार के अंगभूत दूसरे साधनों के परित्याग को, स्वीकार करने में अपनी साधन की बुद्धि के छोडने के विषय को शब्द से (अपने मुख से) पूर्वार्ध में बताया गया है।

उत्तर वाक्यत्तिल् शोल्लुकिर कैंकर्यत्तुक्कु पूर्वभावि-
यान प्राप्ति प्रतिबंधक सकल पाप विमोचनत्तैयुम्
उत्तरवाक्यत्ताले शाब्दमाक प्रतिपादि क्कैयालुम्।

उत्तर वाक्य में बताये जानेवाले कैंकर्य के पूर्व भावि होनेवाली प्राप्ति के शत्रु सभी पापों में छुडाने में उत्तरार्ध में अपने मुख से बताया गया।

द्वयत्तुक्कु विवरणमाय् पंचमवेद सारभूत गीतोपनिषत्
तात्पर्यमाय् चरम रहस्यमाय्यिरुन्दुळ्ळ चरमश्लो-

कत्तिनुडय वर्थत्तै संसय विपर्ययमर वरुळिच्चेय-
किरार् इतिलर्थम् केट्कैकाकविरे येम्बेरुमानार
पतिनेट्टु पर्यायम् तिरुकोट्टियूर नम्बिपक्कत्तिलळिन्दरि-
ळित्तु, नंबितानु मितिल र्थत्तिनुडय गौरवत्तैयुम्
इतुक्कधिकारि कळिल्लामैयालुम् पारत्तिरे यिवनुडय
आस्तिक्यादर परीक्षार्थमागवुम् पलकाल नडन्दु
तुवळप्पण्णि शूळखुकोण्डु मासोपवासङ्गोण्डु अरुमै
पडुत्ति अरुळिच्चेयतरुळित्तु।

दूसरे रहस्य भूत द्वय के विवरण के रूप में पञ्चम वेद के सारभूत गीता का तात्पर्य चरम रहस्य भूत चरम रहस्य के अर्थ को किसी प्रकार के संदेह के न होने के लिए अब बताते हैं।

इसका अर्थ जानने के लिये ही श्री भाष्यकार श्री तिरुकोट्टिनंबी के पास अठारह बार पधारे थे। श्री नंबीजी ने भी इसके अर्थ के गौरव इसके अधिकारियों के अभाव को जानकर ही इनको इसपर होनेवाले प्रेम की जांच कने के लिये इनको कई बार घुमाकर तकलीफ देकर महीनों का निरशन कराके इस अर्थ को दुर्लभ बनाकर। बताने की कृपा की।

निकृष्ट सत्वनिष्ठनाय् परमात्मनिरक्तनाय् अपरमात्मनि
वैराग्यमुडयनाय् प्रमाण परतंत्रनाय् भगवद्वैभवम्
श्रुतमानाल् अतु उपपन्नम् बुद्धियान विस्त्रम्भबाह-
ल्यमुडयनाय् आस्तिकाग्रेसरनाय् इरुप्पारोरुवनुण्डा
किल् अवनिश्लोकार्थश्रवणानुष्ठानत्तुक्कु अधिकारिया
कैयाले अधिकारिदुर्लभत्तालुम् अर्थगौरवत्तालुम्
इत्तिवेळियिडादे मरैत्तुकोण्डु पोन्दारकळ् एम्बेरु-
मानार्कु मुनबुक्कार।

जो महान् सत्वगुणवाला हो परमात्मा के विषय में प्रीतिमान और संसार सुखों में विरागी हो, प्रमाणों का परतंत्र हो भगवान के **विषय**

सुनने मात्र से उसके बारे में गाढ विश्वासवाला हो और वह उपपन्न यानी वह ठीक है मानकर रहनेवाला हो आस्तिकों में अग्रेसर कोई एक हो वही इस श्लोक का अर्थ जानने योग्य माना जाता है। ऐसे अधिकारी का रहना असंभव माना जाता है। अतः उस अधिकारी के दुर्लभ होने से और अर्थ गौरव से भाष्यकार के आचार्य (इत्तैविळियिडाते) इसका अर्थ जाहिर किये बिना (मरैत्तुकोण्डु) बचाते हुए (पोन्दारकळ्) रहते थे।

संसारिकळ् दुर्गति कण्डु पोरुक्कमाट्टातपडि कृपैकरै पुरुण्णिरु कैयाले अर्थविन् शीरमैं पाराते अनर्थत्ते पारत्तु वेळिइट्टरुळिनार् एम्बेरुमानार्।

रामानुजाचार्य ने तो संसार में रहनेवालों की बुरीदशा देखकर उसका सहन नहीं कर सके और अतिशय कृपा से भरकर अर्थ की महिमा की गणना न करके संसारियों के अनर्थ को ही देखकर जाहिर कर दिया।

अप्पडि युपदेशित्तु विडुकिर मात्र मन्रिक्के यिव्वर्थत्ते येल्लोरु मरिन्दुज्जीविक्कै वेणु मेन्नुम् परमकृपै-याले इरे इतु तन्नै पल प्रबंधलिलुम् संग्रहविस्तर-रूपेण विवररुळिच्चेय्ततु।

श्री पिल्लै लोकाचार्यजी ने उस प्रकार उपदेश करने के अलावा इस अर्थ को सब लोग जानकर उज्जीवी संसार से पार होने केलिये इसको कई प्रबन्धों में कहीं संक्षेप रूप में कहीं विस्ताररूप में विवरण दे दिया।

मत्तुक्कुप्रबंधळेल्लावत्तिलुम्बोल निन्रिक्के स्त्रीबालर-कळुक्कुमधिकरिक्कलाम्बडि वेळियरुळिच्चेयततु-इप्रबन्धत्तिले यिरे।

दूसरे सभी प्रबन्धों के खिलाफ स्त्रियों व बालकों को भी अधिकार मिलने की तरह इस प्रबन्ध में ही जाहिर कर दिया।



चरमश्लोकार्थ का अनुवाद

१. कीळ् शिल उपाय विशेषङ्गळै उपदेशिक्क अवैदुश्शकङ्गळेन्रुम् स्वरूपविरोधिकळेन्रुम् निनैत्तु शोकाविष्टमान वर्जुनैक्कुरित्तु अवनुडय शोकनिवृत्यर्थमाक इनि इतुक्कव्वरुकिल्लैयेन्न लाम्बडियान चरमोपदेशत्तै यरुळिच्चेय्कैयाले चरमश्लोकमेन्रु इतुक्कु पेरायिरुक्किरतु।

इसके पहले कुछ उपायों के बताने पर उनके आचरण तकलीफों के रहने से और उनके स्वरूपविरोधी होने से दुःख से भरे हुए अर्जुन के विषय में उसके दुःख दूर करने केलिये इस चरमश्लोक से बढकर और किसी दूसरे के अभाव के कारण चरमोपाय के रूप में बताने से इसका नाम चरमश्लोक पडा।

२. इतिल् पूर्वार्धत्तिले अधिकारिकृत्यत्तै अरुळिच्चेय्किरार्।

इसके पूर्वार्ध में अधिकारि के कार्य को बता रहे हैं।

३. अधिकारिक्क कृत्यमावतु उपाय परिग्रहम्।

अधिकारी का कार्य उपाय का स्वीकार करना है।

४. अत्तै साङ्गमाक विधिक्किरात्-

उसको उपायान्तर परित्यागरूपी अङ्ग के साथ बताया जा रहा है।

५. राग प्राप्तमान उपायन्दाने वैधमानाल् कडुक परिग्रहैक्कैक्कु उडलायिरुक्किमिरे।

अपनी समझ में प्रेमपूर्वक अवलंबित् करनेवाले उपाय को खुद बतावें तो उसका स्वीकार करना आसान होता है न?

६. इतिल् पूर्वार्धम् अञ्जुपदम्

इस पूर्वार्ध के पांच शब्द हैं।

७. सर्वधर्मान्

सभी धर्मों को

८. एल्लाधर्मङ्गळेयुम्

सभी धर्मों को

९. धर्म मावतु फल साधन मायिरुक्किरतु

धर्म माने फल का साधन होता है यहाँ सर्वशब्द का धर्म शब्द का और बहुवचन का अलग-अलग अर्थ बताया जायगा।

१०. इङ्गच्चोल्लुकिर धर्मशब्दम् दृष्टफल साधनङ्गळै च्चोल्लुकैयन्रिक्के, मोक्षफल साधनङ्गळैच्चोल्लुकिरतु।

यहां बताया हुआ धर्म शब्द दृष्टफल साधनों को न बताकर मोक्षफल साधनों को बताता है।

११. अवैतान् श्रुतिस्मृति विहितङ्गळाय् पलवायिरुक्कैयाले बहुवचनप्रयोगम् पण्णुकिरतु।

वे धर्म तो वेद और शास्त्रों से बहुत तरह बताये गये हैं। अतः धर्मशब्द बहुवचन में प्रयुक्त किया गया है। बहुवचन प्रयोग का यह प्रयोजन है कि वेदशास्त्रों के कई धर्म बताये जाते हैं।

१२. अवैयावन कर्म ज्ञान भक्ति योगङ्गळुम्, अवताररहस्य ज्ञानमुम्, पुरुषोत्तमविद्यै, देशवासमुम् तिरु-

नामसंकीर्तनम्, तिरुविळैक्कैरिक्कै तिरुमालै येडुक्कै तुडक्कमान उपाय बद्धया च्चेय्युमवैयुम्।

वे तो ये हैं। कर्म, ज्ञान भक्तियोग, अवतार रहस्य का ज्ञान, पुरुषोत्तम विद्या पुण्यदेशों में बसना, हमेशा भगवन्नाम का स्मरण करना, भगवान के समीप दिया जलाना, फूल मालाओं को बनाकर समर्पित करना आदि उपाय के ख्याल से किये जानेवाले धर्म हैं।

१३. सर्व शब्दत्ताले अव्वोसाधन विशेषङ्गळै यनुष्ठिक्कु मिडत्तिल् अवैत्तुक्कु योग्यतापादकङ्गळान नित्यकर्मङ्गळै च्चोल्लुकिरतु।

अब सर्व शब्द का विशेष अर्थ बताया जा रहा है। उक्त साधनों के अनुष्ठान योग्यता पहुँचानेवाले नित्यकर्मों को सर्वशब्द बताता है।

"संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्ह स्सर्वकर्मसु" जो संध्यावंदन आदि नित्य कर्म नहीं करता वह पूर्वोक्त सब कर्मों केलिये योग्य नहीं होता। अतः ऐसे नित्य नैमितिक कर्मों को सर्वशब्द बताता है।

१४. आक श्रुति स्मृति चोदितङ्गळाय् नित्यनैमित्तिकादि रूपङ्गळान कर्म योगाद्युपायङ्गळेन्रपडि।

इसलिये वेदशास्त्रों से बताये हुए नित्यनैमित्तिकादिरूपी कर्मयोगादि के उपायों को सर्वशब्द से जानना चाहिये।

१५. इवत्तै धर्ममेन्रिगरतु भ्रमित वर्जुनन् करुत्ताले।

इनको धर्म समझकर भ्रांतिमे पडे हुए अर्जुन को ख्याल में रखकर यह बताया गया। इससे प्रथम शब्द का अर्थ पूरी तौर से बताया गया।

१६. परित्यज्य

छोडकर

१७. त्यागमावतु उक्तोपायङ्गळै यनुसंधित्तु, शुक्तिकैयिले

रजतबुद्धि पण्णुवारैप्पोलेयुम् विपरीत दिशा गमनम्
पण्णुवारेप्पोलेयुम् अनुपायङ्गळिले उपायबुद्धि
पण्णिनामेनि्गर बुद्धि विशेषत्तोडे त्यजिक्कै।

अब त्याग शब्द का विशेष अर्थ बताया जाता है। ऊपर बताये हुए उपायों का स्मरण करके सीप में चांदी की भ्रांति पानेवालों के समान, किसी एक दिशा में जाना चाहते हुए औरेक दिशामें जानेवालों के समान जो उपाय नहीं हैं उनमें उपाय का ज्ञान हम पाते हैं अतः इस ख्याल से छोड देना ही त्याग शब्द का अर्थ है। यहाँ त्याग शब्द, ल्यप् और परि उपसर्ग का अलग अलग अर्थ बताया जा रहा है।

१८. परियेनि्गर उपसर्गत्ताले पातकादिकळै विडुमाप्पोले
रुचिवासनै क्कळोडुम् लज्जैयोडुम् कूड मरुवलिडात-
पडि विडवेणु मेनि्गरतु।

परि नामक उपसर्ग से प्रयोजन बताया जा रहा है।

"ब्रह्महत्या सुरपानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः" आदि पातकों के छोडते समय फिर उनमें संबन्ध न होने के लिये रुचि वासनाओं को भी "स्वस्वरूप के खिलाफ हमने यह क्या किया? इस लज्जा के साथ छोड देना चाहिये।

१९. ल्यप्पाले "स्नात्वा भुञ्जीत" एन्रुमाप्पोले उपायान्त-
रगळै विट्टे पत्तवेणुमेनि्गरतु।

'त्याज्य' में रहनेवाला ल्यप् प्रत्यय यह बताता है कि 'स्नात्वा भुञ्जीत' के स्थान पर बताये हुए उपायान्तरों को छोडकर ही सिद्धोपाय का स्वीकार करना चाहिए।

२०. "चचाल चापञ्च मुमोच वीरः" एनि्गरपडिये इवै
यनुपायङ्गलान मनि्रक्के काल कर्टेनि्गरतु।

राम रावण युद्ध में रामने रावण को भाग जानेका मौका न दिया क्यों कि रावण ने अपने हाथ में रहनेवाले धनु को न छोडा। अंत में

जब रावण ने धनु नीचे डाल दिया तब राम ने उसको भाग जाने का मौका दिया। यहाँ रावण के धनुर्ग्रहण ने उसे अपनी रक्षा करने से रोक दिया।

उपायान्तरों से थोडा संबन्ध रहता है तो वह सिद्ध फल का विरोधी होता है वह पैरों को बंधन होता है। फल का प्रतिबन्धक होता है।

२१. चक्रवर्तियैप्पोले इजक्केक्कुरुप्पु।

राजा दशरथ की तरह दुःख का कारण होता है।

राजा दशरथ ने राम को जंगल में भेज देने का वचन देकर उसी वचन रूपी भासमान विषय को ही धर्म समझा। 'रामो विग्रहवान् धर्मः' को छोड दिया। इसके बाद दशरथ को पछतावा हुआ। वियोग का दुःख न सह सके अंत में राजा ने प्राण ही छोड दिये।

२२. सर्व धर्मङ्गळैयुम् विट्टेन्रुशोल्लुकैयाले शिलर अधर्मङ्गळ् पुकुरुमेन्रारकळ्।

कुछ लोग कहते हैं "सभी धर्मों को छोडो कहने से कुछ अधर्म जो धर्म नहीं हैं इसमें शामिल होंगे। निषिद्ध परिहार को भी छोडा जायगा तो निषिद्ध दोष करने पडेंगे।

२३. अतु कूडातु। अधर्मङ्गळै च्चेरयेन्रु शोल्लामैयाले।

यह ठीक नहीं है। धर्मों को छोडने को कहा जाय तो अधर्मों के करने के लिये कहीं नहीं बताया गया।

२४. तन्नुडैये शोल्लित्ताकतो वेन्निल

यह शक पैदा होता है कि खुद ही बताया गया।

२५. आकातु। धर्मशब्दम् अधर्मनिवृत्तियै क्काट्टामैयाले।

वह नहीं हो सकता कि धर्म शब्द अधर्म निवृत्ति को नहीं बता रहा है।

२६. काट्टिनालुमत्तै योळिन्दवतै च्चोल्लितामित्तनै।

यदि बता सके तो भी उसे छोडकर बाकी विषय को ही बताना चाहिये। क्यों कि इस विषय में उसका प्रसंग नहीं है।

२७. तन्नैयुम् ईश्वरनैयुम् फलत्तैयुम् पारत्ताल् अवै पुकुर वंळि यिल्लै

अपने को ईश्वर को और फल को देखें तो उनके (अधर्मों के) प्रवेश का रास्ता ही नहीं है। परित्यज्य का अर्थ पूरा हुआ।

२८. माम्

मुझे — अब तीसरे शब्द का अर्थ बताया जा रहा है।

२९. सर्वरक्षकनाय उनक्कुकैयाळाय् उन्निशेवु पारित्तु उन्दोषत्तै भोग्यमाक कोण्डु उनक्कु पुकलाय् नीर् शुडुमाप्पोले शेरुप्पारे पिरिक्कुम् बोतुम् विडमाट्टादे रक्षिक्किरवेन्नै।

सब का रक्षक होकर तुम्हारा किंकर होकर रहता हूँ। तुम्हारी स्वीकृति की अपेक्षा करता हुआ तुम्हारे दोषों को अत्यन्त प्रियता के साथ लेता हुआ और तुम्हारा रक्षक होकर रहता हूँ। शीतलता के साथ रहनेवाला पानी ही गरम होकर रहे तो (जिस प्रकार असंभव संभवसा होता है) उसी प्रकार पुरुषकार भूत लक्ष्मी ही कोई न कोई दोष आरोपित करके तुम्हें दूर करने लगेगी तो तुम्हारी रक्षा करते हुए छोडकर न रहनेवाले।

३०. इत्ताल् पर व्यूहङ्ङळैयुम् देवतान्तर्यामि त्वत्तैयुम् तविल किरतु।

मुझ को इससे यह साफ — मालुम होता है कि आंखों के अदृश्य रहनेवाले परमपदवासी और व्यूह के रूप में रहनेवाले परब्रह्म और अन्तर्यामी वाले अग्नि इंद्र वरुण आदि देवताओं का निराकरण करके

केवल विभव के रूप में रहनेवाले रामकृष्ण आदि अवतारों को लेकर 'माम्' कहा जाता है।

३१. धर्म संस्थापनम् पण्ण पिरन्दवन् ताने सर्वधर्मङ्गळै-युम् विट्टु एन्नै पत्तेन्गयाले साक्षाद्धर्ममताने एन्गिरतु।

धर्म की स्थापना के लिए उत्पन्न होकर खुद ही 'सभी धर्मों को छोडो मेरा आश्रय लो' कहने से यह मालुम होता है कि साक्षात् धर्म खुद स्वयं ही है। 'कृष्णं धर्मं सनातनम्' और 'रामो विग्रहवान् धर्मः' से यह स्पष्ट मालुम होता है कि राम आदि अवतार पुरुष ही धर्म हैं।

३२. इत्ताल विट्ट साधारण धर्मङ्गळिलेत्त ञ्ओल्लुं किरतु।

इससे यह मालुम होता है कि छोडे जानेवाले सभी धर्मों से यह बडा विलक्षण धर्म कृष्ण है (जो छोडा नहीं जा सकता)।

३३. अतावतु सिद्धमाय्, परमचेतनमाय् सर्वशक्तिमाय् निरपायमाय् प्राप्तमाय् सहायान्तरनिरपेक्षमायिरुक्कै।

इस कृष्ण रूपी धर्म की विलक्षणता बताई जाती है। यह सिद्ध भूत है यानी कर्म ज्ञान भक्ति आदि साधनों के बराबर न होकर सनातन होने के कारण जल्दी फल देनेवाला है।

''यः सर्वज्ञः सर्ववित्'' सर्वज्ञ होने के नाते परम चेतन है।

''परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते'' के अनुसार यह शक्तिमान है। किसी प्रकार के अपाय यानी प्रत्यवाय के बिना रहनेवाला है। परतंत्र चेतन के स्वरूपानुकूल होने के नाते सुलभ है। और दूसरी मददों की अपेक्षा न चाहनेवाला है।

३४. मत्तै युपायङ्गळ् ताध्यङ्ग काकैयाले स्वरूप सिद्धियिल चेतननै यपेक्षित्तिकक्केम् अचेततङ्गळु-

माय्, अशक्तुळमाय् इरुक्कैयाले कार्यसिद्धियिल् ईश्वरनै अपेक्षित्तिरुक्कम् इन्द उपायम् अवत्तुक्केतिरतट्टै इरुक्कैयाले इतनिपेक्षमायिरुक्कम्।

दूसरे कर्म ज्ञान भक्ति आदि उपाय तो चेतन से अनुष्ठित किये जानेवाले हैं। उनके फल प्राप्ति के विषय में उस चेतन की अपेक्षा करते हैं। उनके (अचेतनों के) अचेतन और अशक्त होने के कारण कार्य सिद्धि के विषय में ईश्वर की अपेक्षा रखते हैं। यह शरणागति रूपी सिद्धोपाय तो उनसे भिन्न हैं। दूसरे उपायों की सहायता के बिना स्वयं सिद्धि यानी फल देनेवाला है।

३५. इतिले वात्सल्यस्वामित्व सौशील्य सौलभ्यङ्ग्ळकिर गुण विशेषङ्ग्ळ् नेराक प्रकाशक्किरतु।

इस शरणागति रूपी सिद्धोपाय में वात्सल्य स्वामित्व सुशीलता सुलभता आदि गुणविशेष तो साक्षात् प्रकाशमान होते हैं।

अधर्म को धर्म समझकर युद्ध में विमुख होकर बैठे अर्जुन के पाप आदि मलिन को देखे बिना परमात्मा श्रीकृष्ण ने वात्सल्य गुण से अर्जुन का उद्धार किया। सुशील व सुलभ होकर अर्जुन के कार्य में सहायक हुआ।

३६. कैयमुळकोलुम् पिडिन्तशिरुवारुवाय् क्कयिरूम् सेनाधूळिधूसरितमान तिरुक्कळलुम् तेरुक्कु की ळेवात्तिन तिरुवडिकळ्ळुयुम् तिर्किर सारथ्यवेषत्तैमाम् एन्रु काट्टुकिरार।

एक हाथ में चावुक दूसरे हाथ में लिया हुआ लगाम सेना की धूलि से धूसरित केशपाश, रथ के नीचे की ओर फैलाया हुआ चरणद्वंद्व आदि से सारथि के वेष में रहनेवाले अपने को दिखाते हैं।

३७. एकम्...

सिर्फ मुझ एकको

३८.इन्द एकशब्दम् स्थान प्रमाणत्ताले अवधारणार्थत्तै काट्टुकिरतु।

यहाँ एक शब्द स्थान प्रमाण से अवधारण के अर्थ को (एवकार के अर्थ को) बताता है।

३९.'मामेव ये प्रपद्यन्ते' 'तमेव चाहम्' 'त्वमेवोपाय-भूतो मे भव' आरेनक्क निन्पात में' शरणाव्तन्दो-ळिन्दाय् 'एन्रुम्' शोल्लुकिरपडिये।

"मामेव" "तमेव" "त्वमेव" "निन्पातमे" आदि कई स्थलों में जिस प्रकार अवधारण का अर्थ बताया जाता है यहाँ उसीप्रकार एक शब्द का अर्थ बता जाना चाहिये।

४०."इत्ताल्" व्रज एन्गिर स्वाकारत्तिल उपाय भावत्तै त्तविरक्किरतु।

इससे 'व्रज' की जगह पर बताये जानेवाले स्वीकार रूपी उपाय का निराकरण किया जाता है।

४१.स्वीकारंदानुमवनाले वन्दतु।

स्वीकार तो उससे ही प्राप्त होता है। सार यह है कि स्वीकार तो भगवान से ही किये जानेवाला कार्य है। अलग उपाय नहीं है।

४२.सृष्ट्यवतार मुखत्ताले पण्णिन कृषि फलम्।

स्वीकार भी तो सृष्टि व अवतारों के जरिये किया हुआ भगवान की कृषि का फल है।

सृष्टि माने देह इंद्रिय शून्य हो भोग मोक्षरहित हो और अचेतन की तरह रहनेवाले जीव करण (इंद्रिय) और शरीर को देकर और ज्ञान युक्त करना है। भगवान कई अवतार लेकर प्रेम विश्वास पैदा करनेवाले असंख्य कल्याण गुणों से व अमानुष चेष्टा गुणों से जीवात्मा को संतुष्ट करने का प्रयत्न का फल।

४३. अतुवु मवनतिन्नरुळे

वह भी परमात्मा की कृपा ही है। यह आळ्वार का कथन है।

४४. इत्तैयोळियवुम् ताने कार्यं शेय्यमेन्रु निनैक्ककडवन्।

इसके बिना यह समझ लेना चाहिये कि वह खुद ही रक्षा करेगा।

४५. अल्लतपोतु उपायनैरपेक्ष्यम् जीविवियातु।

ऐसा न होतो (यानी स्वीकार भी चाहिये तभी नारायण हमारी रक्षा करेगा) ऐसी भावना रहे तो सिद्धोपाय की सहायान्तर की निरपेक्षता नहीं रहेगी।

४६. इतु सर्वमुक्तिपरिहारार्थम् बुद्धिसमानार्थम् चैतन्य-कार्यम् राग प्राप्तम् स्वरूपनिष्ठम् अप्रतिषेध द्योतकम्।

यह स्वीकार चेतन की किसी योग्यता के बिना भी ईश्वर मुक्ति देता है तो सभी चेतनों को मुक्ति देनेवाला होगा। तब सब चेतनों को मुक्ति दिये जाने का प्रसंग आयगा। इसका निवारण के लिये "व्रंज" स्वीकार करो का कथन है। "इतने दिनों से भगवान ने मेरी रक्षा नहीं की अब क्या विश्वास है कि आगे करेगा" इसके जवान के लिये स्वीकार उपयोगी होता है। यह चेतन चैतन्य रहित नहीं है। यह निश्चय करके कि ईश्वर ही उपाय है" समझकर रहना चेतन का कार्य होता है। अतः व्रज का प्रयोजन है।

स्वीकार तो किसी प्रकार का विधि नहीं है केवल प्रेम से ही चेतन भगवान से कहता है। अतः राग प्राप्त है। अत एव अपने परतंत्र रूपी स्वरूप का भंग नहीं होता। अनादि काल से इस विश्वास से कि अपनी रक्षा खुद कर सकूंगा" आदि ज्ञान से रक्षा पा न सककर उनकी रक्षा से दूर रहनेवाले चेतन को उक्त प्रकार का ज्ञान याद दिलाता है और भगवान की रक्षा का निषेध न करना ही व्रज· शब्द का प्रयोजन है।

यहाँ कई प्रकार से व्रज शब्द के प्रयोजन बताये गये हैं। परन्तु यह तो उपायमात्र नहीं है।

४७. कीळतानुम् पिररुमान निलैयै क्कुलैत्तान्। इङ्ङ् तानु मिवनुमान निलैयैक्कुलै क्किरान्।

इसके पहले सर्वधर्मान् परित्यज्य के स्थान पर चेतन के दूसरों और अन्य उपायों को मोक्ष साधन के ज्ञान का निराकरण कर दिया गया। "एकम्" के स्थान पर स्वीकार के विषय में उपायत्व का ज्ञान निराकृत करने से उपायभूत ईश्वर व स्वीकार को उपाय समझनेवाला चेतन दोनों मिलकर रहने की स्थिति का निराकरण किया जाता है।

४८. अवनै यिवन् पत्तुंपत्तु अहंकार गर्भम् अवद्यम्।

निरुपाधिक रक्षक ईश्वर से चेतन का कर्तृत्व रूपी स्वीकार की प्रार्थना करना अहंकार से युक्त है। पिता के पास पुत्र का अपने पालन पोषण करने का पत्र लिखवाने की तरह निन्द्य है।

४९. अवनुडय स्वीकारमे रक्षकमुम्।

भगवान का स्वीकार ही चेतन का रक्षक है।

५०. मत्तैयुपायङ्गळुक्कु निवृत्तिदोषम् इतुक्कु प्रवृत्तिदोषम्।

मोक्ष पाने के दूसरे उपायों का और इस सिद्धोपाय का फर्क बताया जाता है। दूसरे उपाय चेतन के प्रयत्न से ही सफल होंगे। चेतन प्रयत्न से निवृत्त होगा तो वह दोष होगा। क्यों कि जब तक प्रयत्न रहेगा तब तक सिद्धि मिलेगी। प्रयत्न छोडेगा तो सिद्धि नहीं मिलेगी। अतः निवृत्ति दोष हो जाता है।

सहायांतर निरपेक्ष यह सिद्धोपाय तो चेतन के प्रयत्न के बिना ही सफल होता है। अतः इस उपाय की प्रवृत्ति (प्रयत्न) दोष है।

५१. "शित्तेवेण्डा"

"शित्तवेण्डा" नामक पाशुर (पद्य) में यह बताया गया। (मा शुचः) सिद्धोपाय स्वीकार बताते समय "शित्तवेण्डा" "मत्तोन्रिल्लै" नामक पाशुरों में बताया गया कि चेतन को और कोई कुछ नहीं करना चाहिये।

५२. निवृत्ति कीळे श्शोल्लित्तु।

निवृत्ति इसके पहले बताया गया "सर्वधर्मान् परित्यज्य" सभी प्रयत्नों से निवृत्ति ही चेतन का काम है।

५३. उपकारस्मृतियुम् चैतन्यत्ताले वन्दततु उपायत्तिलन्त र्भवति।

भगवान के उपकार की स्मृति तो चेतन को अपने चैतन्य से आया है। वह उपायों में नहीं लिया जाता।

५४. शरणम्

शरण

५५. उपायमाक

उपाय के रूप में

५६. इन्द शरण शब्दम् रक्षितावैयुम् गृहत्तैयुम् उपायत्तैयुम काट्टूकडवते याकिलुम् इव्वइत्तिल् उपायत्तैय काट्टुकिरतु कीळोडे शेरवेण्डुकैयाले।

यद्यपि शरण शब्द रक्षा करनेवाले और घर का अर्थ बताता है यहाँ तो उपाय को ही बताता है। वैसा बताने पर ही पूर्व और अपर संबंध उचित होता है।

५७. व्रज

जानो

५८. बुद्धि पण्णु

निश्चित् ज्ञानवान बनो।

५९. गत्यर्थमावतु बुद्ध्यर्थमाय् अध्यवसि एन्रपडि।

यद्यपि व्रज धातु गति का अर्थ बतानेवाला है तो भी "गत्यर्था: बुद्ध्यर्था:" के अनुसार बुद्धि में रखो निश्चयज्ञानवान बनो अर्थ बताया जाता है।

६०. वाचिक कायिकङ्गळुक्कु अपेक्षितङ्गळायिरुक्क च्चेय-
तेयुम् "ज्ञानान्मोक्षम्" आकैयाले मानसमान वनु-
ष्ठानत्तै च्चोल्लुकिरतु।

यद्यपि वाचिक कायिक अनुष्ठान भी इसके लिये चाहिये तो भी "ज्ञानान्मोक्षम्" के अनुसार मानसिक अनुष्ठान यानी निश्चयात्मक बुद्धि से रहो बताया गया।

६१. आक त्यागत्तै च्चोल्लि त्याग प्रकारत्तै च्चोल्लि
पत्तप्पडु उपायत्तै च्चोल्लि उपायनैरपेक्ष्यम् शोल्लि,
उपायत्वञ्जोल्लि उपायस्वीकारम् शोल्लुकिरतु।

सर्वधर्मान्' पद से त्याज्य वस्तु बताया गया। 'परित्यज्य' से छोडने का विधान बताया गया। 'माम्' शब्द से उपाय बताया गया। 'एकम्' शब्द से उपायनिरपेक्षता (दूसरे उपायका अभाव) बताया गया। 'शरणम्' से उपाय बताया गया। 'व्रज' से उपाय स्वीकार बताया गया।

चरमश्लोक का दूसरा वाक्य

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

६२. अहम्

"मैं" यहाँ भी कार्य करने के मुख्यगुण प्रकाशित होते ही हैं। वात्सल्यादिगुण ज्ञान शक्त्यादि गुण, सर्वज्ञत्व सर्वशक्तत्व आदि गुण वर्तमान सारथि का वेष सब मालुम होते हैं।

६३. स्वकृत्यत्तै यरुळिच्चेय्किरार्

बाद भगवान अपना काम बता रहे हैं। पहले भाग में अधिकारि के कार्य बताये गयी दूसरे में भगवान का कार्य बताया जायगा।

६४. सर्वज्ञनाय् सर्वशक्तनाय् प्राप्तनान नान्।

सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान हो जिम्मेदारी से युक्त मैं हूँ। "यः सर्वज्ञः सर्ववित्" इस प्रमाण के अनुसार सारी शक्तिवाला सब को जाननेवाला भगवान् है।

६५. ईश्वर क्रीळ निन्र निनैयुम्मेल् पोक्कडि यरिकैक्कुम् अरिन्दपडिये शेयतु तलै कट्टुकैक्कुमेकान्तमान गुणविशेषङ्गळुयुम् तन् पेराशच्चेयतु तलै कट्टुकै कीडान बुद्धिविशेषत्तैयुम् काट्टकिरतु।

(इस चेतन के अनिष्ट का निवारण करके इष्टों की प्राप्ति करते समय) इसके पहले बनी हुई दशा को इसके बाद पाने के मार्ग को जानने के लिये और जानने के बाद उसके पूरा करने के आवश्यक गुण विशेषों को भगवान अपना काम समझकर पूरा करने के आवश्यक संबन्ध को बताया जाता है।

(पूरा समझकर करने को सर्वशक्तित्व और सर्वज्ञत्वादिगुण और चेतन के उपकार करने में उसके साथ रहनेवाले शेषित्व संबन्ध बताये जाते हैं।

६६. तनक्काकक्कोंड सारथ्यवेषत्तै अवनैयिट्ट पारातेतन्नै-यिट्टुपारूतु अंजिनवच्चंदीरतानान तन्मयै अहम् एन्रु काट्टुकिरार्।

अर्जुन की रक्षा के लिये भगवान के सारथि के वेष को, भगवान् के सौशील्य से बना न समझकर अपनी नज़र से जानने से जो शंका पैदा हुई है उसके दूर करने के लिये भगवान अपने यथार्थ रूप को अहं शब्द से बताते हैं।

६७. कीळिल् पारतंत्र्यमुम् इन्द स्वातंत्र्यत्तिनुडैययेल्लै निलमिरे।

पहले सारथि के रूप में रहकर जो परतंत्रता से रहे वह अपनी स्वतंत्रता की सीमा मात्र है।

६८. त्वा

तुझ को

६९. अज्ञनाय् अशक्तनाय् अप्राप्तनाय् एन्नैये उपायमाग पत्तियिरुक्किरवुन्नै।

अज्ञ हो अशक्त हो और प्राप्ति के बिना रहनेवाले मुझे उपाय के रूप में पानेवाले तुझे।

७०. सर्वपापेभ्यः

सभी पापों से

७१. मत्प्राप्ति प्रतिबंधकळेन्नु यावै यावै शिल पापङ्गळै-क्कुरित्तु अञ्जुकिराय अव्वोपापङ्गळेल्लावत्तिल् निन्नुम्।

मेरे पाने में प्रतिबंधक समझकर जिन जिन पापों के विषय में डरते हो उन सभी पापों से पाप माने इष्ट विरोधी और अनिष्ट के हेतु होता है। यहाँ मोक्ष संदर्भ होने के नाते भगवल्लाभ के विरोधी, ज्ञान विरोधी, रुचिविरोधी उपाय विरोधी के इसके पहले ही निवृत्त होने के कारण अब प्राप्ति विरोधी जो मेरे पाने में प्रतिबंधक हैं उन पापों के विषय में। 'सर्वपापेभ्यः' से जानना चाहिये।

७२. पोयनिन्र ज्ञानमुम् पोल्लावोळुक्कु मळुक्कुडम्बम् एन्गिरपडिये अविद्या कर्म वासना रुचि प्रकृति संबंधगळै च्चोल्लुकिरतु॥

उत्पत्ति विनाश के संबंध में असत्य शब्द से बताए हुए अचेतन के विषय में आत्मज्ञान। "देह ही आत्मा है" वाले ज्ञान से संसार के

दुष्कर्मों की प्रवृत्ति उस कर्म के कारण आनेवाला देह संबंध यानी अविद्या कर्म वासना रुचि आदि प्रकृति संबंधों को बताये जाते हैं।

यहाँ अविद्या माने ज्ञानानुदय रूपी अन्यथा ज्ञान रूपी और विपरीत ज्ञान रूपी तीन तरह का अज्ञान है।

कर्म माने पुण्य व पाप। मोक्ष के विषय में पाप के साथ पुण्य को भी छोडना चाहिये।

वासना माने अज्ञान वासना कर्मवासना और प्रकृति संबंध वासना। असल में वासना शब्द का अर्थ है अबुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति, रुचि = बुद्धि-पूर्वक प्रवृत्ति यह विषय के अनुसार बहु प्रकार होता है। प्रकृति संबंध माने स्थूल सूक्ष्म रूपी अचेतन के साथ संबंध।

७३. तृणच्छेद कंडूयनादिकळैप्पोले प्रकृति वासनैयाले अनुवर्तिक्क मवैयेन्न, लोकापवादभीतियालुम् करुणै-यालुम् कलकत्तालुम् शेय्युमवैयन्न एल्लावत्तैयुम् निनैक्किरतु ।।

घास पूस का तोडना, शरीर में खुजना जैसे वासना से किये जानेवाले, लोकापवाद के डर से और दूसरों पर पैदा होनेवाले दयाभाव से किये जानेवाले और मनकी चंचलता से किये जानेवाले सभी काम पाप शब्द से बताये जाते हैं।

७४. उन्मत्त प्रवृत्तिक्कु ग्रामप्राप्तिपोले त्यजित उपायङ्ग-ळिले यिवैयन्वितङ्गळामोवन्रु निनैक्कवेण्डु ।

पागल किसी गाँव के जाने में प्रवृत्त होकर औरेक गाँव में पागलपन से पहुंचता है तो वह कोई न कोई गांव जाता ही है। उसी प्रकार उपाय का ख्याल न करके "लोकापवाद आदि के कारण किये जानेवाले ये काम त्यक्त उपायों में शामिल होते हैं। या नहीं" ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये'।

७५. कलङ्गि उपायबुद्धया पण्णुम् प्रवृत्तियुम् पापकत्तो-
डोक्कुम्।

जरूर ये सब, पापों में शामिल होते हैं मतिभ्रम से उपाय बुद्धि से किये जानेवाले उपायान्तरों में पापों में शामिल होते हैं।

७६. मोक्षयिष्यामि

छुडाऊंगा। मुक्त करूंगा।

७७. मुक्तनाम् बडि पण्णक्कडवेन्।

चेतन को परमपदवासी मुक्त करूंगा।

७८. णिच्वाले नानुम् वेण्डा, नीयुम् वेण्डा अवै
तन्नैयेविट्टुपोङ्गा नेनि्गरान्।

'इष्यामि' रूपी णिच प्रत्यय से यह बोध होता है कि मुझे भी यत्न करने की जरूरत नहीं है और तुम को भी कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। वह खुद ही संसार दूर हो जायगा। वे पाप खुद ही छोडकर दूर जायंगे।

७९. एन्नुडय निग्रहफलमाय् वन्दनै नामिरङ्गिनाळ् किडु-
क्कुमोवेन्गै।

मेरे गुस्से से जो अनिष्ट आते हैं वे मुझ में दया पैदा होने पर रह सकेंगे ?

८०. अनादि कालम् पापङ्गळै कण्डु नी पट्ट पाट्टै
अवै तान् पडुम्बडि पण्णडिरेन्।

चिरकाल से पापों को देखकर जो तकलीफें तुम झेलते हो उनको वे पाप ही झेलेंगे यानी वे पाप दूर रहोंगे।

८१. इति उन्नैकैयिलु मुन्नैकाङ्गित्तारेन् एन्नु डम्बिलळुक्कै
नाने पोक्किकोळ्ळेनो ?

फिर तुम्हें अपने हाथ में नहीं छोडूंगा मैं अपने शरीर की गंदगी को खुद दूर न करुंगा? दुःख मत करो।

८२. मा शुचः

दुःख मत करो।

८३. नीयुन् कार्यत्तिले यधिकारियामैयालुम्, नामन् कार्य त्तिले यधिकरत्तु कोण्डु पोरु कैयालुम् उनक्कुशोक- निमित्त मिल्लैकानेन्रु अवनुडय शोकनिवृत्तियै प्पणिणक्कोडुक्किरान्।

तुम अपने काम में लगे नहीं रहते हो मैंने ही तुम्हारे कार्य को अपने ऊपर डाल रखा है और पूरा करता जाता हूँ। तो तुम्हें दुःख करने की जरूरत नहीं है। इस प्रकार भगवान कृष्ण अर्जुन के दुःख को दूर करते हैं।

८४. निवर्तकस्वरूपै च्चोल्लि निवर्त्यङ्गळुन्नै वन्दुमेलि- डातेन्रु शोल्लि शोकनिमित्त मिल्लै काणेन्गिरान्।

निवर्तक का स्वरूप बताकर निवर्तनीय पाप आदि के तुम्हारे ऊपर न पडने का विषय बताकर अब बताते हैं कि तुम्हें शोक करने की जरूरत नहीं है।

८५. 'एत्तिनालिडर क्कडर विडत्तिये ळैनेंजमे 'एन्गिरान्'।

श्रीतिरुमुडिशियाळ्वार ने अपने मन से कहा कि सर्वेश्वर ने तुम्हारे विरोधियों को दूर करके तुम्हारी सेवा लेने के लिये तुममें शामिल हुए। उसके अनुसार तुम क्यों शोक समुद्र में पडे हुए हो?। एळै = सफल नेञ्जमे = हे मन इडरक्कडल् = दुःख समुद्र में एत्तिनाल् = क्यों इडत्ति = पडे हुए हो?

८६. पापङ्गळै नान् पोरुत्तु पुण्यमेन्रु निनैप्पिडानिर्क नी शोकिक्कडवैयो।

पापों का सहन करके उन्हें पुण्यों के रूप में लेता हूँ तुम क्यों दुःखी होते हो ?

८७. उय्यरकोंडार विषयमाक उडैयव ररुळिच्चेयत वार्तैयै स्मरिप्पतु।

उय्यक्कोंडार के विषय में श्री रामानुजाचार्य ने जो बताया उस वार्ता का इस संदर्भ में अनुसंधान (स्मरण) करना चाहिये।

तत्त्व निष्ठवेत्ता उयरकोंडार भक्ति योग में लगकर रहते थे। तब रामानुजाचार्य ने इस चरमश्लोक का अर्थ समझाया। भगवान ने पहले कर्मयोगादि उपायान्तरों को इसलिये बताया कि उनके दुर्भरत्व दुस्सक्त्व का ज्ञान अर्जुन को पहुंचाने के लिये। बाद चरमश्लोक में बताया हुआ चरमश्लोक का भाव समझाकर "शरणागति" रूपी उपाय की सरळता सुलभता तथा सत्त्व के आचरण में सुगमता बताई। पहले कठिन विषय में ज्ञान पैदाकर बाद सरळ विषय में मन को आसानी से प्रविष्ट कर सकते हैं। इस श्लोक के अनुसार कर्मादि का आचरण उपायबुद्ध्या करने की जरूरत नहीं है। शास्त्र विहित कर्मों के होने के नाते कर्तव्य बुद्ध्या करना ही चाहिये। रामानुजाचार्य उपदेश को श्री उयरकोंडार ने निराकृत किया तो श्री रामानुजाचार्य ने बताया कि आप विद्वान हैं अतः इस श्लोक का अर्थ मान लिया पर भगवान की कृपा के अभाव से आचरण में लाने से इनकार करते हैं। विरले ही लोग इस श्लोक के अर्थ में रुचि दिखाते हैं। इस बात के उदाहरण के लिये उयरकोंडार का उदाहरण दिया गया।

८८. इतुक्कु ईश्वरस्वातंत्र्यत्तिले नोक्कु।

इस श्लोक का मुख्य उद्देश्य ईश्वर की सर्वस्वतंत्र होने में है। जब सभी शास्त्र एक पक्ष में एक ओर रहते हैं तो यह श्लोकार्थ दूसरे पक्ष में शास्त्र में बताये हुए सभी धर्मों को वासना के साथ छोडे तो चेतन

को खुद ही भगवान ही निरपेक्ष साधन होकर प्राप्ति के विघ्नकारक सभी पापों को दूर करके अपनी प्राप्ति को सुगम बनाता है। इसके लिये चेतन को विश्वास चाहिये।

८९. इतुताननुवाद कोटियिले एन्रु वङ्गिपुरत्तु नम्बिवार्तै।

वंगीपुरपु नंबि ने बताया कि यह तो अनुवाद कोटि (पुनरुक्ति में) शामिल है।

९०. अर्जुनन् कृष्णनुडैय वानै तोळिलकळालुम् ऋषि-
क्कळ् वाक्यंगळालुम् कृष्णन तन कार्यत्तिले अधिकरित्तु
पोरुकैयालुम् इवने नमक्कु तञ्जमेन्रु तुणिन्दु-
पिन्वु तन्नै पत्ति चोल्लुकैयाले।

कृष्ण के अमानुष कार्यों से ऋषियों के वाक्यों से कृष्ण के अपने काम में लगे रहने से अर्जुन ने यह सोचकर कि कृष्ण ही हमारा रक्षक है उसका आश्रय लिया तब कृष्ण ने यह बताया कि तुम मेरे शरण में आओ।

अर्जुन बचपन से कृष्ण का साथी बन कर रहा। उसके अतिमानुष कार्यों से और अघटित घटना सामर्थ्य से प्रभावित हुआ।

एष नारायणः साक्षात् क्षीरार्णव निकेतनः।
नागपर्यङ्कमुत्सृज्य ह्यागतो मधुरापुरीम्॥

"कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः। कृष्णस्य कृते भूतमिदं विश्वं चराचरम्॥" इस प्रकार कृष्ण के परापर तत्व होने के नाते यथार्थवादी ऋषियों के वाक्यों से बचपन से अर्जुन नगरवास व वनवासों में कृष्ण की मदद लेता रहा था। इसलिये उसने समझा कि कृष्ण के कहे हुए सभी उपाय हमें रक्षक हैं।

९१. पुरम्बु पिरन्दतेल्लामिवन्नेञ्ञे च्चोतिक्कैक्काका।

इसके पहले बताए उपायों के बाद चरमोपाय के बताने में यह रहस्य है अर्जुन की परीक्षा करके देख लें। वह किस उपाय को पसंद

करता है। गीता में बताया गया कि —

यच्छ्रेयस्स्यान्निश्चितम् ब्रूहि तन्मे।
शिष्य स्तेऽहं शाधि त्वां मां प्रपन्नम्॥

जो श्रेयस्कर लाभदायक है उसका उपदेश करके मुझे ठीक रास्ते में लाओ। मैं तुम्हारा शिष्य हूँ। मेरा शासन करो मैं तुम्हारा शरणागत हूँ। यह वाक्य अर्जुन का कहा हुआ है। तब कृष्ण ने चरमोपाय बताया।

पहले ही इसके बताने में यह युक्ति बताई गई कि देखें इन उपायों को सुनकर अर्जुन तृप्त रहेगा और चुप रहेगा कि नहीं ? जब कृष्ण को मालुम हुआ कि अर्जुन उन उपायों से तृप्त नहीं है फिर कहता है कि ये सब मेरे मन को व्याकुल करते हैं। अतः हे कृष्ण तुम मेरा शासन कर ठीक रास्ते में लाओ। तब कृष्ण ने अर्जुन को चरमोपाय का अधिकारी समझकर चरम श्लोक का उपदेश दिया।

९२. वेदपुरुषन् उपायान्तङ्गळै विधित्ततु कोण्डिपशुवुक्कु
तडि कट्टिविडुवारैप्पोले अहंकार ममकारङ्गळाल्
वन्द कळिप्पत्त स्वरूप ज्ञानम् पिरिप्पिक्कैकाक।

वेद में कई मोक्षोपाय बताये गये चोरी से फसल खानेवाले पशु के गले में मोटी लाठी के बांधने के बराबर अहंकार और ममकार से आये हुए घमण्ड को दूर करने के लिये चेतनों को स्वरूप ज्ञान मिलने के लिये यह उपाय बताया गया है।

९३. संन्यासि मुन्वळ्ळवत्तै विडुमाप्पोले इव्वळुवु पिर-
न्दवन् इवत्तै विट्टार्कुत्तम् वारातु।

चरम आश्रम संन्यासी का है। उसमें जो शामिल होता है वह अपने पुराने आश्रमों के कार्यों को छोड देता है। उसी प्रकार यहाँ तक स्वरूप ज्ञान पाकर इन उपायों को छोडे देतो पाप नहीं लगेगा।

९४. इवन्दनिवै तन्नै नेराक विट्टिलन्।

यह चेतन तो इनको खुद पूरी तरह से नहीं छोडता।

साधनांतर परित्यागपूर्वक सिद्धसाधान का अवलंबन करनेवाला अधिकारी कर्म ज्ञान आदि इन उपायान्तरों को मूलतः नहीं छोडता।

९५. कर्मम् कैङ्कर्त्तिलेपुकुम् ज्ञानम् स्वरूप प्रकाशित्तिलेपु-कुम् भक्ति प्राप्य रुचियिलेपुकुम् प्रपत्ति स्वरूप याथात्म्य ज्ञानत्तिले पुकुम्।

कर्म का आचरण कैंकर्य यानी सेवा में मिलता है। ज्ञान स्वरूप के ज्ञान शेषत्व अनन्यार्हत्व अनन्य भोग्यत्व आदि में मिलता है। भक्ति प्राप्य की रुचि में मिलता है। प्राप्त स्वरूप की यथार्थ ज्ञान निष्ठा में मिलता है।

९६. ओरुं फलत्तुक्कु अरियवाळियैयुम् एळियवजियैयुम् उपदेशिक्कैयाले इवैयिरंडुमोळिय भगवत्प्रसादमे उपायमाक क्कडवतु।

किसी एक फल के लिये दुश्शक मार्ग और सुशकमार्ग के उपदेश किये जाने से बढकर इन दोनों के सिवा भगवान की कृपा ही उपाय होता है।

जन्मान्तर सहस्रेषु तपो ज्ञान समाधिभिः
नराणां क्षीणपुण्यानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते।

कई हजारों जन्मों में तपज्ञान आदि के अनुष्ठान से चेतनों के पाप क्षीण हो जाते हैं तब कृष्ण में भक्ति पैदा होती है।'' के अनुसार भक्ति का उदय बताया गया।

सर्वधर्मान् परित्यज्य' आदि से चरमश्लोक के आचरण से प्रपत्ति बताई गई। पर दोनों के सिवा भगवान का अनुग्रह दया ही मुख्य है। दोनों भगवान के अनुग्रह से ही प्राप्त होते हैं। अतः भगवत् कटाक्ष उपाय समझना चाहिये।

९७. पेत्तुक्कु वेण्डुवतु विलक्कामैयुमिरप्पुम्।

फल सिद्धि के लिये यही चाहिये कि भगवान की रक्षा के खिलाफ निषेध न करें।

९८. चक्रवर्ति तिरुमगन् पापत्तोडे वरलु ममैयुमेन्रान्
इवन् पुण्यत्तै पोकट्टु वरवेणु मेन्रान्।

श्रीराम ने बताया कि चेतन के पाप के साथ शरण में आने पर भी रक्षा करूंगा। कृष्ण ने कहा पुण्य को छोडकर आने पर रक्षा करूंगा। सहायान्तर संसर्गस्सहनानं उपाय भूत नुक्कु सुकृतम् अनिष्टम्।

९९. आस्ति नायिव्यर्थत्तिल् रुचि विश्वासङ्गळुडैयनाय्
उज्जीवित्तल् नास्तिकनाय नशित्तल् ओळियनडुवि-
लनिलैयिल्लै एन्र भट्टर कंबाररुळिच्चेयतवार्तै।

इस विषय में आस्तिक रुचि और विश्वास को लेकर रहे तो उज्जीवित होता है और नास्तिक नष्ट होता है। इन दोनों को छोडकर तीसरा मार्ग मध्यमस्थिति नहीं है। इस विषय भट्टर एंबार का संदेश अनुसंधान करने लायक है।

१००. व्यवसायमिल्लातवनुक्कु इतिलन्वयम् आमत्तिल्
भोजनंप्पोले।

इस चरमश्लोक में बताए हुए त्याग और स्वीकार में जो दृढ अध्यवसाय के साथ यानी "फल जरूर मिलेगा, भगवान ही उपाय है, शरणागति ही मुख्य है" ऐसा निश्चय नहीं रखता वह फल नहीं पाता अजीर्ण रोगी के लिये भोजन की तरह विनाश का हेतु होता है।

१०१. विट्टुशित्तर कोट्टिरुप्पर एन्गिर पडिये अधिकारिकळ्
नियतर्।

श्रीपेरियाळ्वार ने इस चरम श्लोक में निष्ठावान होकर आचरण में रखा। जैसे व्यक्ति ही अधिकारी माने जाते हैं।

१०२. "वार्तैयरिवर्" एन्गिर पाट्टुम् "अत्तनाकि" एन्गिर
पाट्टुम् इतुक्कर्थमाक अनुसंधेयम्।

आळ्वार की श्रीसूक्तियों में दो पाशुरों को (पद्यों को) इस चरमश्लोक के अर्थ के रूप में जो बताये गये उनको सूचित करके इस चरमश्लोक के अर्थ को पूरा किया जाता है।

नम्माळ्वार ने बताया।

पाशुरम्

वार्तैयरिवर् पोरत्तपिरप्पोडु नोयोडु
मूप्पोडिरप्पिवैपेरत्तु प्पेरुन्दुम्बम्
वेररनीक्कितन् ताळियकीज च्चेरत्तु
अवन् शेयुक्षेमत्तै येण्णित्तैळिवतु॥

अर्थ — वार्तै = चरमश्लोक का अर्थ, अरिववर = जानने-वाले, पोरत्त = ज्यादाफैलाये हुए, प्पिरप्पोडु = जन्मों को, नोयोडु = बीमारियों से, मूप्पोडु = बार बार होनेवाले जन्मों से, इरप्पिवै = मौत से पेरुन्दम्बम् = बडे दुःख को, वेरर = समूकिरूप से, नीक्कि = दूर करके, तन ताळिन् = अपने चरणों को, कीळ = नीचे च्चेरत्तु = लाकर, अवन् = भगवान् से, शेय्युम् = किये जानेवाले, क्षेमत्तै = रक्षा को, एण्णित्तु = जानकर, मायवर्कु = आश्रय पहुंचानेवाले के, आळनि = दास न होकर, आवरो = रहेंगे।

भावार्थ — चरमश्लोक के अर्थ के जाननेवाले भक्त, हमेशा होनेवाले जन्मों, बीमारियों और मौत से मिलनेवाले दुःखों को दूरकर अपना आश्रय यानी मोक्षपद देनेवाले परमात्मा श्रीमन्नारायण के दास हुए बिना रहेंगे? जरूर दास हो जायेंगे।

श्री तिरुमजि शैप्पिरान्जी की श्रीसूक्ति। भक्तिसार।

पाशुरम्

मुक्तनार मुकुन्दनार ओत्तोळातुपल
पिरिप्पोळितु नम्मै याट्कोळवान्
अत्तनाकि यन्नै याकि याळु मेम्बिराननुमाय्
पुकुन्दु नम्माळ्मेविनार एळै नञ्जमे
एत्तिनालिडर्कडर्किडतित।

अर्थ — मुत्तनार = संसार **संबन्ध** रहित हो, मुकुन्दनार = **वैकुंठ में** रहनेवाले स्वामी ने, ओत्ताळात = बेमिसाल, पलपिरप्पु = कई जन्मों को, ओळितु = दूर करके, नम्मै = हमारे ऊपर, आट्कोळ्वान् = दया किया। अत्तनाकि = पिता होकर, अन्नैयाकि = माता होकर, आळम् = शासन करनेवाले, एम्बरानुमाय = स्वामी होकर, नम्माळ = हममें, पुकुन्दु = प्रविष्ट होकर, मेविनार = मिल गये। एळै = ज्ञानशून्य, नेञ्ञ मे = हे मन, एत्तिनाल् = दुःखसमुद्र में, इडरक्कडर = व्याकुल होते, किततित्ति = क्यों पडे हो।

तात्पर्य — वैकुण्ठवासी स्वामी हममें आकर मिल गये। अन्तरात्मा होकर रहते हैं। हमें कई जन्म दिये। पिता की तरह और माता की तरह हमारी रक्षा करते हुए हमारा शासन करते हैं। ऐसी हालत में हे मन तुम क्यों दुःख समुद्र में पडकर व्याकुल होते हो।

पिळ्ळलोकाचार्य तिरुवडिगळे शरणम्

श्रीमते रामानुजाय नमः ॥



अपनी ओर से..

भारतीय आस्तिक लोक में भक्ति, ज्ञान और कर्म मार्गों का प्रचलन वैदिक काल से होता आ रहा है। वेदान्त दर्शन को लेकर इनमें से किसी-कि का महत्त्व बताते हुए अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत आदि कई दार्शनिक संप्रदाय भी देश-भर में प्रचलित हुए, इनमें से भक्ति मार्ग को सुलभ व उत्कृष्ट कहकर सभी आचार्यों ने इसका यथेष्ट प्रचार भी किया। विशिष्टाद्वैत वैष्णव साहित्य में भक्ति पर जोर देते कितने ही अनमोल ग्रंथ रचे गये। उनमें से श्रीमान् पिल्लै लोकाचार्य कृत 'मुमुक्षुपडि' का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह रचना आकार में छोटी होकर भी महत्त्व में बडी है। इसका प्रमाण इसका अनितर सुलभ प्रचार ही है। इस रचना में विशिष्टाद्वैत संप्रदाय के अनुसार भक्ति साधना में अत्युत्तम माने जानेवाले 'रहस्य-त्रय' का विशद विवेचनापूर्ण विवरण मिलता है। तिरुमंत्र, द्वय और चरम श्लोक नामक रहस्य त्रय को प्रपत्ति मार्ग के साधक अतीव श्रद्धा से अमूल्य रत्न त्रय की तरह स्वीकार करके साधाना में अग्रसर होते हे। लेकिन यह ग्रंथ, अनेकानेक विशिष्टाद्वैत दार्शनिक ग्रंथों की तरह तमिल भाषा में होकर, तदितर भाषी लोगों को अपरिचित व अप्राप्य रह गया है। अब तिरुमल तिरुपति देवस्थान की ओर से हिन्दू धार्मिक ग्रंथ प्रकाशन प्रणाली के अन्तर्गत इसउत्तम ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाश में लाया जा रहा है। हिन्दी संस्कृत व तमिल भाषाओं में प्रसिद्ध विद्वान श्रीमान् नंडूरि शोभनाद्राचार्य जी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी में मूल ग्रंथ का सरल व साधिकार अनुवाद प्रस्तुत कर दिया है। उनके इस अनुवाद सहित मूल ग्रंथ को प्रकाशित करके आस्तिक लोक को समर्पित करने में देवस्थान अतीव हर्ष का अनुभव कर रहा है। आशा है कि हमारे अन्य हिन्दू धार्मिक ग्रंथों की तरह इस 'मुमुक्षुपडि' का भी पाठक लोग समुचित आदर करेंगे।

(Sd.) Ch. VENKATAPATHI RAJU

T.T.D. Religious Publications Series No.318

Rs 6

Published by Sri Ch. Venkatapathi Raju, I.A.S., Executive Officer, Tirumala Tirupati Devasthanams, Tirupati and Printed at Tirumala Tirupati Devasthanams Press, Tirupati.

Copies--2000 Dt.13-7-1989.